ॐ

सर्वज्ञाय नमः।

सर्व सामान्य
प्रतिक्रमण-आवश्यक

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ-३६४२५० (सौराष्ट्र)

भगवान श्री कुंदकुंद-कहान जैन शास्त्रमाला, पुष्प–235

ॐ

सर्वज्ञाय नमः।

सर्व सामान्य
प्रतिक्रमण-आवश्यक

सहज चिदानंद.

卐

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ–३६४२५० (सौराष्ट्र)

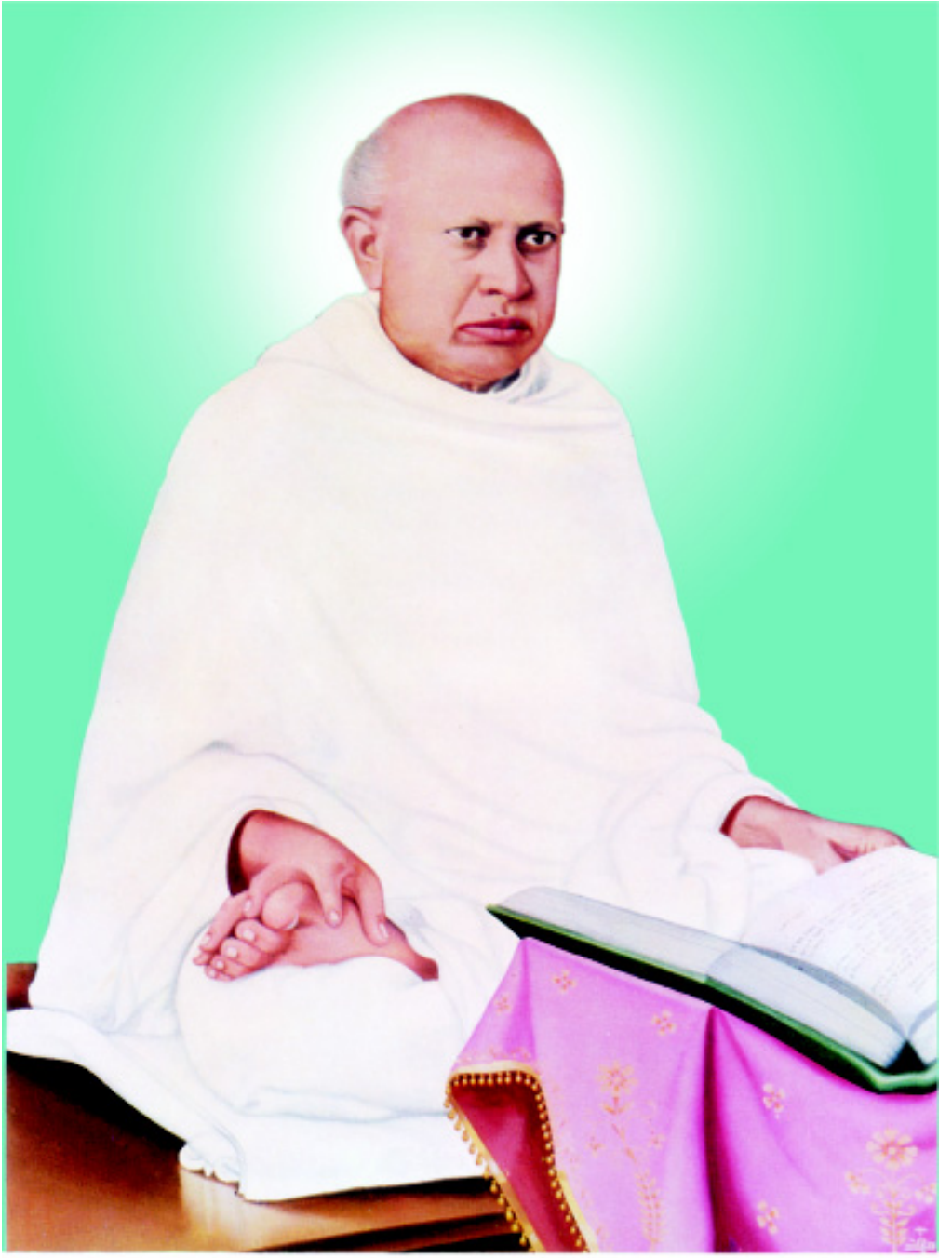

પરમ પૂજ્ય અધ્યાત્મમૂર્તિ સદ્‌ગુરુદેવ શ્રી કાનજીસ્વામી

अनुक्रमणिका

प्रथम प्रतिक्रमण

विषय	पृष्ठ
निश्चय और व्यवहार प्रतिक्रमणकी व्याख्या	1
प्रतिक्रमण के छ विभाग	1
नमस्कार मंत्र	2
वंदना	2
सामायिकका स्वरुप	3
तीर्थंकर भगवानकी स्तुतिका स्वरुप	6
छः पदका पाठ (कायोत्सर्ग)	7
श्री सद्गुरु--वंदन	11
समकितका सच्चा स्वरुप	12
सम्यग्ज्ञानके दोषका प्रतिक्रमण	37
बारह व्रतोंका स्वरुप	37
संल्लेखना	41
मिथ्यात्वका स्वरुप	41
चार मंगल	43
क्षमापना	43
लोगस्ससूत्रका कायोत्सर्ग	46
प्रत्याख्यान	48
नमोत्थुणं	48
स्वाध्यायकी महिमा	50

द्वितिय प्रतिक्रमण

विषय	पृष्ठ
देवगुरुधर्म मंगल	51
दिव्यध्वनि नमस्कार	51
ब्रह्मचर्य--महिमा	51
सर्वज्ञका स्वरुप	52
समयसारजी स्तुति	52
आत्मसिद्धि शास्त्रके पदों	53
सामायिक पाठ	56
श्रावक कर्तव्य	58
मिच्छामि दुक्कडं	58
परमपद प्राप्तिकी भावना	59
प्रत्याख्यान	61
जिनजीकी वाणी	61
अंतिम मंगल	62
उपादान--निमित्तका दोहा	63
उपादान--निमित्तका संवाद	65
सद्गुरु--उपकारदर्शन	77
प्रणिपात--स्तुति	77
गुरुदेवश्री प्रति क्षमापना स्तुति	78
तात्त्विक सुवाक्य	79

શ્રી દિગમ્બર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ – ૩૬૪૨૫૦

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

सर्व सामान्य प्रतिक्रमण-आवश्यक

प्रतिक्रमण के दो प्रकार है : (1) निश्चय और (2) व्यवहार।

निश्चयप्रतिक्रमणकी व्याख्या[1] :—

पूर्वे किया हुआ जो अनेक प्रकारके विस्तारवाला शुभाशुभ कर्म उनसे जो आत्मा अपनेको दूर रखता है वो आत्मा प्रतिक्रमण है।

व्यवहार-प्रतिक्रमणकी व्याख्या[2] :—

अपने शुभाशुभ कर्मका आत्म निंदापूर्वक त्याग करनेका भाव– आत्माका ऐसा विशुद्ध परिणाम कि जिसमें अशुभ परिणामोकी निवृत्ति हो।

प्रतिक्रमणके निम्न प्रकारसे छ विभाग है :—

(1) सामायिक,
(2) तीर्थंकर भगवानकी स्तुति,
(3) वंदन
(4) प्रतिक्रमण
(5) कायोत्सर्ग
(6) प्रत्याख्यान

[श्री सद्‌गुरुदेवकी विनयपूर्वक आज्ञा लेकर वा उनकी गैरहाजरीमें भगवान श्री सीमंधरप्रभुकी आज्ञा लेकर प्रतिक्रमण शुरु करना]

---

१. समयसार गाथा २८३

२. श्रावक प्रतिक्रमण (पंडित नंदलालकृत प्रस्तावनामेंसे)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

पाठ : १

मंगलाचरण : नमस्कार-मंत्र

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ।।

अर्थ :—श्री अरिहंतोको नमस्कार हो, सिद्धोको नमस्कार हो, आचार्यो को नमस्कार हो, उपाध्यायोंको नमस्कार हो और लोकमें स्थित सर्व साधुओंको नमस्कार हो।[1]

अरिहंत सिद्ध आचार्य ने, उपाध्याय मुनिराज,
पंच पद व्यवहारथी, निश्चये आत्मामां ज. १०४[2]

पाठ : २

वंदना (तिक्खुत्तो)

तिक्खुत्तो, आयाहिणं, पयाहिणं, वंदामि, णमंसामि, सक्कारेमि, सम्माणेमि, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेईयं, पज्जुवासामि.

अर्थ :—पंच परमष्ठिको दो हाथ जोडकर आवर्तनसे तीन प्रदक्षिणाके बाद मैं स्तुति करता हूँ। नमस्कार करता हूँ, विनयसे सत्कार करता हूँ, विवेकपूर्वक सन्मान करता हूँ हे पूज्य! आप कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप, ज्ञानरूप हो, इसलिये मैं आपकी पर्युपासना-सेवा करता हूँ।

---

१. यह पंच परमेष्ठीका स्वरूप मोक्षमार्ग प्रकाशक (गुजराती) पेईज २ से ६ तक है। जिज्ञासु वहाँसे देख ले।

२. योगीन्द्र देवकृत योगसारमेंसे।

શ્રી દિગમ્બર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ – ૩૬૪૨૫૦

पाठ : ३❀

आत्मा के किस भावको श्री भगवान सामायिक कहते है, वह अब प्रस्तुत है :—

जे समतामां लीन थई, करे अधिक अभ्यास;
अखिल कर्म ते क्षय करी, पामे शिवपुर वास. ९३.
सर्व जीव छे ज्ञानमय, जाणे समता धार;
ते सामायिक जिन कहे, प्रगट करे भवपार. ९९.
राग–द्वेष बे त्यागीने, धारे समता भाव;
सामायिक चारित्र ते, कहे जिनवर मुनिराव. १००.

(हरिगीत)

विरदो सव्वसावज्जे तिगुत्तो पिहिदिंदिओ ।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥ १२५ ॥
सावद्यविरत, त्रिगुप्त छे, इन्द्रियसमूह निरुद्ध छे,
स्थायी समायिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १२५[१]

अर्थ :—जो सर्व सावद्यक्रियासे विरक्त होकर, तीन गुप्तियोंको धारण करके अपनी इंद्रियोंका गोपन करता है, उसे स्थायी (सच्ची) सामायिक होती है, ऐसा श्री केवली भगवानने आगममें कहा है।

जो समो सव्वभूदेसु थावरेसु तसेसु वा ।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥ १२६ ॥
स्थावर अने त्रस सर्व भूतसमूहमां समभाव छे,
स्थायी समायिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १२६.

अर्थ :—जो सर्व त्रस और स्थावर प्राणीओंमें समताभाव रखता है, उसे स्थायी (सच्ची) सामायिक होती है; ऐसा श्री केवली भगवाननें आगममें कहा है।

❀ योगीन्द्र देवकृत योगसारमेंसे ।

१. यह नं. १२५ से १३३ तककी गाथा श्री नियमसारकी है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

जस्स सण्णिहिदो अप्पा संजमे णियमे तवे ।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥ १२७ ॥

संयम, नियम ने तप विषे आत्मा समीप छे जेहने,
स्थायी समायिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १२७.

अर्थ :—संयम पालते हुए, नियम करते हुए तथा तप धरते हुए एक आत्मा जिसे समीप वर्तता है, उसे स्थायी (सच्ची) सामायिक होती है; ऐसा श्री केवली भगवानने आगममें कहा है।

जस्स रागो दु दोसो दु विगडिं ण जणेइ दु ।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥ १२८ ॥

नहि राग अथवा द्वेषरूप विकार जन्मे जेहने,
स्थायी समायिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १२८.

अर्थ :—जिसे राग–द्वेष विकार उत्पन्न नहीं होता, उसे स्थायी (सच्ची) सामायिक होती है, ऐसा श्री केवली भगवानने आगममें कहा है।

जो दु अट्टं च रुद्दं च झाणं वज्जेदि णिच्चसो ।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥ १२९ ॥

जे नित्य वर्जे आर्त तेम ज रौद्र बंने ध्यानने,
स्थायी समायिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १२९.

अर्थ :—जो नित्य आर्त और रौद्र ध्यानोको त्यागतां है, उसे स्थायी (सच्ची) सामायिक होती है, ऐसा श्री केवली भगवानने आगममें कहा है।

जो दु पुण्णं च पावं च भावं वज्जेदि णिच्चसो ।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥ १३० ॥

जे नित्य वर्जे पुण्य तेम ज पाप बन्ने भावने,
स्थायी समायिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १३०.

શ્રી દિગમ્બર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ – ૩૬૪૨૫૦

अर्थ :—जो कोई नित्य पुण्य और पापभावोंको त्यागता है, उसे स्थायी (सच्ची) सामायिक होती है; ऐसा श्री केवली भगवानने आगममें कहा है।

जो दु हस्सं रई सोगं अरइं वज्जेदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥ १३१ ॥

जो दुगंछा भयं वेदं सव्वं वज्जेदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥ १३२ ॥

जे नित्य वर्जे हास्यने, रति अरति तेम ज शोकने,
स्थायी समायिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १३१.

जे नित्य वर्जे भय जुगुप्सा, वर्जतो सौ वेदने,
स्थायी समायिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १३२.

अर्थ :—जो हास्य, शोक, रति, अरति, जुगुप्सा, भय, तीन प्रकारके वेद ऐसे सर्व नोकषायको नित्य दूर रखता है, उसे स्थायी (सच्ची) सामायिक होती है; ऐसा श्री केवली भगवानने आगममें कहा है।

जो दु धम्मं च सुक्कं च झाणं झाएदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥ १३३ ॥

जे नित्य ध्यावे धर्म तेम ज शुक्ल उत्तम ध्यानने,
स्थायी समायिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १३३.

अर्थ :—जो कोई नित्य धर्मध्यान और शुकलध्यानको ध्याता है, उसे स्थायी (सच्ची) सामायिक होती है, ऐसा श्री केवली भगवानने आगममें कहा है।

*

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

पाठ : ४

अब तीर्थंकर भगवानकी सच्ची स्तुतिका स्वरूप कहते हैं :

जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं ।
तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू ।। ३१ ।।

जीती इन्द्रियो ज्ञानस्वभावे अधिक जाणे आत्मने,
निश्चय विषे स्थित साधुओ भाखे जितेंद्रिय तेहने. ३१.[१]

अर्थ :—जो इंद्रियोंको जीतकर ज्ञानस्वभाव द्वारा आत्मा को, अन्यद्रव्यसे अधिक जानता है, उसे जो निश्चय नयमें स्थित साधु है, वो सचमें जितेन्द्रिय कहते है।

जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं ।
तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया बेंति ।। ३२ ।।

जीती मोह ज्ञानस्वभावथी जे अधिक जाणे आत्मने,
परमार्थना विज्ञायको ते साधु जितमोही कहे. ३२.

अर्थ :—जो मुनि मोहको जीतकर, अपने आत्माको ज्ञानस्वभाव द्वारा अन्य द्रव्यभावोंसे अधिक जानता है, वो मुनिको, परमार्थके जाननहार जित मोह कहते है।

जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हवेज्ज साहुस्स ।
तइया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहिं ।। ३३ ।।

जितमोह साधु तणो वळी क्षय मोह ज्यारे थाय छे,
निश्चयविदो थकी तेहने क्षीणमोह नाम कथाय छे. ३३.

अर्थ :—जिसने मोहको जीता है ऐसे साधुको जब मोह क्षीण होकर सत्तामेंसे नष्ट होता है, तब निश्चय के जाननहार निश्चयसे वह साधुको 'क्षीणमोह' कहते है।

१. पाठ ४ और ७में जो गाथाएँ हैं, वह श्री समयसाजीकी है ।

पाठ : ५*

आत्माका स्वरुप जाननेके लिए आत्माका छः पदका पाठ कायोत्सर्ग रुपसे कहेंगे :—

(नमस्कार मंत्र बोलना)

अनन्य शरणके दातार ऐसे श्री सद्गुरुदेवको
अत्यंत भक्तिसे नमस्कार।

शुद्ध आत्मस्वरुपको प्राप्त ऐसे ज्ञानी पुरुषोंने निम्न कथित वे छः पदको सम्यग्दर्शनके निवासके सर्वोत्कृष्ट स्थानक कहे है।

प्रथम पद :—'आत्मा' है। जैसे घट–पट आदि पदार्थों है, वैसे आत्मा भी है। कोई गुणके कारण जैसे घट–पट आदि होनेका प्रमाण है, वैसे स्वपर प्रकाशक ऐसी चैतन्यसत्ताका प्रत्यक्ष गुण जिसमें है, ऐसा आत्मा होनेका प्रमाण है।

द्वितिय पद :—'आत्मा नित्य है।' घटपट आदि पदार्थ कुछ कालवर्ती है, आत्मा त्रिकालवर्ती है। घटपटादि संयोगी पदार्थ है, आत्मा स्वाभाविक पदार्थ है; क्योंकि उसकी उत्पत्तिके लिए कोई भी संयोग अनुभवगोचर नहिं पाए जाते। कोई भी संयोगी द्रव्यसे चेतनसत्ता प्रगट होने योग्य नहिं होनेसे अनुत्पन्न है। असंयोगी होनेसे अविनाशी है, क्योंकि जिसकी कोई संयोगसे उत्पत्ति नहीं होती, उसका किसीमें लय भी नहीं होगा।

तीसरा पद :—'आत्मा कर्ता है।' सर्वपदार्थ अर्थक्रियासंपन्न है। कुछकुछ परिणामक्रिया सहित ही सर्व पदार्थ देखनेमें आते हैं। आत्मा भी क्रिया संपन्न है। क्रिया संपन्न है, इसलिए कर्ता है। वह कर्तापना त्रिविधरूपे श्री जिनकथित है। परमार्थसे स्वभाव परिणति द्वारा निज स्वरूपका कर्ता है। अनुपचरित (अनुभवमें आनेयोग्य विशेष संबंधसहित)

* श्रीमद् राजचंद्रमेंसे ।

व्यवहारसे वह आत्मा द्रव्य कर्मका कर्ता है। उपचारसे घर, नगर आदिका कर्ता है।

चौथा पद :—''आत्मा भोक्ता है।'' जो जो भी क्रिया है, वह सर्व सफल है, निरर्थक नहि है। जो कुछ भी करनेमें आता है, उनका फल भुगतना पडे ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव है। विष खानेसे विषका फल, शर्करा खानेसे शर्कराका फल, अग्निस्पर्शसे अग्निस्पर्शका फल, हिमस्पर्शसे हिमस्पर्शका फल हुए बिना नहि रहता, वैसे कषायादि व अकषायादि, जो कोई भी परिणाम से आत्मा परिणमे, उसका फल भी होनेयोग्य ही है और वह होता है। वह क्रियाका आत्मा कर्ता होनेसे भोक्ता है।

पाँचवाँ पद :—'मोक्षपद है।' जो अनुपचरित व्यवहारसे जीव के कर्मका कर्तापना निरूपण किया, कर्तापना होनेसे भोक्तापना निरूपण किया, वह कर्मका नष्ट होना भी है; क्योंकि प्रत्यक्ष कषायादिका तीव्रपना हो, लेकिन उनके अनाभ्याससे, उनके अपरिचयसे, उनको उपशम करनेसे, उनका मंदपना दिखाई देता है, वे क्षीण होनेयोग्य दिखता है, क्षीण हो सकता है। वे सर्व बंधभाव क्षीण हो सकते है, इसलिए उनसे रहित ऐसा जो शुद्ध आत्मस्वभाव उस रुप मोक्षपद है।

छट्ठा पद :—'मोक्षका उपाय है।' यदि मात्र कर्मबंध ही हुआ करे ऐसा ही हो, तो उनकी निवृत्ति भी कोई कालमें संभवित नहि है, लेकिन कर्मबंधसे विपरीत स्वभावी ज्ञान, दर्शन, समाधि, वैराग्य, भक्ति आदि साधन प्रत्यक्ष है; जो साधनके बलसे कर्मबंध शिथिल होता है, उपशम होता है, क्षीण होता है, इसी कारण वे ज्ञान, दर्शन, संयमादि मोक्षपदके उपाय है।

(नमस्कार मंत्र बोलकर कायोत्सर्ग पूर्ण करना)

श्री ज्ञानी पुरुषोने, सम्यग्दर्शनके मुख्य निवासभूत कहे हुए ये छः पद इधर संक्षेपमें बताये है। समीप मुक्तिगामी जीवको सहज विचारसे वे सप्रमाण होनेयोग्य है। परम निश्चयरुप जानने योग्य है, वे सर्वविभागे विस्तार होकर, उसके आत्मामें विवेक होने योग्य है, ये छः पद अत्यंत संदेह रहित है, ऐसा परमपुरुषने निरुपण किया है। वो छः पदका विवेक जीवको स्वस्वरूप समझनेके लिए कहा गया है। अनादि स्वप्नदशाके कारण उत्पन्न हुआ है ऐसा जीवका अहंभाव, ममत्वभाव, वह निवृत्त करनेको, यह छः पद की ज्ञानीपुरुषोने देशना प्रकाशी है। वह स्वप्नदशासे रहित ही, अपना स्वरुप है, ऐसा परिणाम जो जीव करे, तो सहजमात्रमें वह जागृत होकर सम्यग्दर्शनको प्राप्त करे; सम्यग्दर्शन को पाकर, स्वस्वभावरुप मोक्षको पावे, कोई विनाशी, अशुद्ध और अन्य भाव विषे उसे हर्ष, शोक, संयोग उत्पन्न न होगा। और स्वस्वरूपके लक्षमें शुद्धपना, अविनाशीपना, अत्यंत आनंदपना, अंतररहित उसके अनुभवमें आता है। सर्वविभावपर्याय मात्र मुझे अध्यायसे ऐक्यता हुई है, उससे केवल 'मैं भिन्न ही हूँ' ऐसा स्पष्ट–प्रत्यक्ष–अत्यंत प्रत्यक्ष–अपरोक्ष उसे अनुभव होता है। विनाशी वा अन्य पदार्थके संयोग प्रति उसे इष्ट–अनिष्टपना महसूस नहीं होता। जन्म, जरा, मृत्यु, रोगादि बाधारहित संपूर्ण माहात्म्यका स्थान ऐसा निजस्वरूपके ज्ञान और वेदनसे, वह कृतार्थ होता है। जो जो पुरुषोंको ये छः पद सप्रमाण ऐसे परम पुरुषके वचन बलसे, आत्माका निश्चय हुआ है वे सब पुरुषोंने सर्व स्वरूपको प्राप्त किया है।

आधि, व्याधि, उपाधि सर्वसंगसे रहित हुए है, हो रहे है और भाविकालमें भी होंगे।

जो सत्पुरुषोंने जन्म, जरा, मृत्युको नष्ट करनेवाला, स्वस्वरुपमें सहज अवस्थातीत होनेका उपदेश किया है, वे सत्पुरुषोंको अत्यंत भक्तिसे नमस्कार हो। उनकी निष्कारण करुणाको नित्य प्रति निरंतर

स्तवनासे भी आत्मस्वभाव प्रगट होता है, ऐसे सर्व सत्पुरुषो, आपके चरणाविंद सदाय हृदयमें स्थापित रहो!

जो छः पदसे सिद्ध है ऐसा आत्मस्वरुप, वह जिनके वचनको ग्रहणसे सहजमें प्रकट होता है, जो आत्मस्वरूप प्रकट होनेसे सर्वकाल जीव संपूर्ण आनंदको प्राप्त करके निर्भय होता है, ऐसे वचनके कहनार, ऐसे सत्पुरुषके गुणोंकी व्याख्या करनेकी अशक्ति है, क्योंकि जिनका प्रत्युपकार न हो सके, ऐसा परमात्मभाव वह जिन्होंने कुछ भी अपेक्षारहित मात्र निष्कारण करूणाशीलतासे प्रदान किया, फिर भी जिन्होंने अन्य जीव के बारेमें ''यह मेरा शिष्य है'' वा 'भक्तिका कर्ता है, इसलिए मेरा है'—ऐसा कभी सोचा नहीं है, ऐसे जो सत्पुरुष, उन्हें अत्यंत भक्तिसह बारंबार नमस्कार हो!

जो सत्पुरुषोंने सद्गुरुकी भक्ति निरुपण की है, वह भक्तिमात्र शिष्यके कल्याण अर्थे कही है। जो भक्ति प्राप्त होनेसे सद्गुरुके आत्माकी चेष्टाके बारेमें वृत्ति रहे, अपूर्व गुण दृष्टिगोचर होकर अन्य स्वछंद मिटे और सहेजे आत्मबोध होवे, इसीकारण जो भक्ति का निरुपण किया है, वह भक्तिको और वे सत्पुरुषोंको बार बार त्रिकाल नमस्कार हो!

जो कभी प्रगटपने वर्तमानमें केवलज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हुई है, लेकिन जिनके वचन के विचारयोगे शक्तिरूप केवलज्ञान है, ऐसा स्पष्ट जाना है, श्रद्धारुप केवलज्ञान हुआ है, विचारदशामें केवलज्ञान हुआ है, इच्छादशारुप केवलज्ञान हुआ है, मुख्य नयके हेतुसे केवलज्ञान वर्तता है, सर्व अव्याबाध सुखको प्रगट करनार वह केवलज्ञान, जिनके योगसे सहजमात्रमें जीव पाने योग्य हुआ, वे सत्पुरुष के उपकार को सर्वोत्कृष्ट भक्तिसे नमस्कार हो! नमस्कार हो!

❀

पाठ : ६

श्री सद्गुरु-वंदन

अहो! अहो! श्री सद्गुरु, करुणासिंधु अपार;
आ पामर पर प्रभु कर्यो, अहो! अहो! उपकार. १.

शुं प्रभुचरण कने, धरुं, आत्माथी सौ हीन;
ते तो प्रभुअे आपियो, वर्तुं चरणाधीन. २.

आ देहादि आजथी, वर्तो प्रभु आधीन;
दास, दास, हुं दास छुं, तेह प्रभुनो दीन. ३.

षट् स्थानक समजावीने, भिन्न बताव्यो आप;
म्यान थकी तरवारवत्, अे उपकार अमाप. ४.

जे स्वरूप समज्या विना, पाम्यो दुःख अनंत;
समजाव्युं ते पद नमुं, श्री सद्गुरु भगवंत. ५.

परमपुरुष प्रभु सद्गुरु, परम ज्ञान सुखधाम;
जेणे आप्युं भान निज, तेने सदा प्रणाम. ६.

देह छतां जेनी दशा, वर्ते देहातीत;
ते ज्ञानीना चरणमां, हो वंदन अगणित. ७.

*

पाठ : ७

१. जीव-अजीवका स्वरूप

(1) समकितका सच्चा स्वरुप भगवानने जैसा कहा है वह अब कहेंगे। वह समजकर सच्ची श्रद्धा करना। प्रथम मुख्य दो तत्त्वो जो जीव और अजीव उनका स्वरूप।

जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण।
पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं ॥ २ ॥

जीव चरित-दर्शन-ज्ञानस्थित स्वसमय निश्चय जाणवो;
स्थित कर्मपुद्गलना प्रदेशे परसमय जीव जाणवो. २.

अर्थ :—हे भव्य! जो जीव दर्शन–ज्ञान–चारित्रमें स्थित हो रहा है, उसे निश्चयसे स्वसमय जान; और जो जीव पुद्गलकर्मके प्रदेशोंमें स्थित हुआ है, उसे परसमय जान।

ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो ॥ ११ ॥

व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित, शुद्धनय भूतार्थ छे;
भूतार्थने आश्रित जीव सुदृष्टि निश्चय होय छे. ११.

अर्थ :—व्यवहारनय अभूतार्थ है और शुद्धनय भूतार्थ है, ऐसा ऋषीश्वरोंने दर्शाया है; जो जीव भूतार्थका आश्रय करता है, वह जीव निश्चयसे सम्यग्दृष्टि है।

भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं ॥ १३ ॥

भूतार्थथी जाणेल जीव, अजीव, वळी पुण्य, पाप ने
आसरव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष ते सम्यक्त्व छे. १३.

अर्थ :—भूतार्थ नयसे जाने हुए जीव, अजीव और पुण्य, पाप तथा आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये नव तत्त्व सम्यक्त्व है।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं ।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि ॥ १४ ॥

अबद्धस्पृष्ट, अनन्य ने जे नियत देखे आत्मने,
अविशेष, अणसंयुक्त, तेने शुद्धनय तुं जाणजे. १४.

अर्थ :—जो नय आत्माको बंध रहित और परके स्पर्शरहित, अन्यपनारहित, चलाचलता रहित, विशेषरहित, अन्यके संयोग रहित–ऐसे पाँच भावरूप देखता है, उसे हे शिष्य! तुं शुद्ध नय जान।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं ।
अपदेससन्तमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं ॥ १५ ॥

अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, जे अविशेष देखे आत्मने,
ते द्रव्य तेम ज भाव जिनशासन सकल देखे खरे. १५.

अर्थ :—जो पुरुष आत्माको अबद्धस्पृष्ट, अनन्य अविशेष (तथा उपलक्षणसे नियत और असंयुक्त) देखता है, वह सर्व जिनशासनको देखता है–कि जो जिनशासन बाह्य द्रव्यश्रुत और अभ्यंतर ज्ञानरूप भावश्रुतवाला है।

सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई परे त्ति णादूणं ।
तम्हा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेदव्वं ॥ ३४ ॥

सौ भावने पर जाणीने पचखाण भावोनुं करे,
तेथी नियमथी जाणवुं के ज्ञान प्रत्याख्यान छे. ३४.

अर्थ :—जो ''स्वात्मा के अलावा सर्व पदार्थो पर है'' ऐसा जानकर प्रत्याख्यान करता है, त्याग करता है, उसे 'प्रत्याख्यान ज्ञान ही है' ऐसा नियमसे जानना, (क्योंकि) अपने ज्ञानमें त्यागरूप अवस्था वोही प्रत्याख्यान है, दूसरा कुछ नहीं है।

अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी ।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमेत्तं पि ॥ ३८ ॥

हुं अेक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञानदर्शनमय खरे;
कंई अन्य ते मारुं जरी परमाणुमात्र नथी अरे! ३८.

अर्थ :—दर्शनज्ञानचारित्ररुप परिणत आत्मा ऐसा जानता है कि : ''निश्चयसे मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, दर्शनज्ञानमय हूँ, सदा अरुपी हूँ, कोई भी अन्य परद्रव्य परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है–यह निश्चय है।''

ववहारेण दु एदे जीवस्स हवंति वण्णमादीया।
गुणठाणंता भावा ण दु केई णिच्छयणयस्स ॥ ५६ ॥

वर्णादि गुणस्थानांत भावो जीवना व्यवहारथी,
पण कोई अे भावो नथी आत्मा तणा निश्चय थकी. ५६.

अर्थ :—यह वर्णसे लेकर गुणस्थान पर्यंत जो जो भावो कहनेमें आये, वो सब व्यवहारनयसे तो जीवका है। (इसलिये सूत्रमें कहे हैं) लेकिन निश्चय नयके मतमें उनमेंसे कोई भी जीवका नहीं।

❀

२. कर्ता-कर्मका स्वरूप

(2) जीव परका कर्ता नहीं है, लेकिन अपने भावका कर्ता है, यह बतानेवाला स्वरुप :—

ण वि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे।
अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणामं जाण दोण्हं पि ॥ ८१ ॥
एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण।
पोग्गलकम्मकदाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं ॥ ८२ ॥

जीव कर्मगुण करतो नथी, नहि जीवगुण कर्मो करे;
अन्योन्यना निमित्तथी परिणाम बेउ तणा बने. ८१.

अे कारणे आत्मा ठरे कर्ता खरे निज भावथी;
पुद्गलकरमकृत सर्व भावोनो कदी कर्ता नथी. ८२.

अर्थ :—जीव कर्मके गुणोको करता नहीं, वैसे ही कर्म जीवके गुणोंको करता नहीं; लेकिन परस्पर निमित्तसे दोनोंका परिणाम जानना। इसी कारणसे आत्मा अपने ही भावका कर्ता (कहने में आता) है; लेकिन पुद्गलकर्मसे किये हुए सर्व भावोंका कर्ता नहीं है।

णिच्छयणयस्स एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि ।
वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं ॥ ८३ ॥

आत्मा करे निजने ज अे मंतव्य निश्चयनय तणुं,
वळी भोगवे निजने ज आत्मा अेम निश्चय जाणवुं. ८३.

अर्थ :—निश्चयनयका मत है कि आत्मा अपने को ही करता है और फिर आत्मा अपनेको ही भोगता है, ऐसा हे शिष्य! तूं जान।

उवओगस्स अणाई परिणामा तिण्णि मोहजुत्तस्स ।
मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदिभावो य णादव्वो ॥ ८९ ॥

छे मोहयुत उपयोगना परिणाम त्रण अनादिना,
—मिथ्यात्व ने अज्ञान, अविरतभाव अे त्रण जाणवा. ८९.

अर्थ :—अनादिसे मोहयुक्त होनेसे, उपयोगका अनादिसे लेकर तीन परिणाम है; वो मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरतिभाव (वे तीन) जानना।

एदेसु य उवओगो तिविहो सुद्धो णिरंजणो भावो ।
जं सो करेदि भावं उवओगो तस्स सो कत्ता ॥ ९० ॥

अेनाथी छे उपयोग त्रणविध, शुद्ध निर्मळ भाव जे;
जे भाव कंई पण ते करे, ते भावनो कर्ता बने. ९०.

अर्थ :—अनादिसे ये तीन प्रकार परिणाम विकार होनेसे आत्माका

उपयोग–चूंकि (शुद्धनयसे) वह शुद्ध निरंजन (एक) भाव है, फिर भी–तीन प्रकारसे होता हुआ, वह उपयोग जो (विकारी) भावको (स्वयं) खुद ही करता है, वह भाव का खुद (स्वयं) ही कर्ता होता है।

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स ।
कम्मत्तं परिणमदे तम्हि सयं पोग्गलं दव्वं ॥ ९१ ॥

जे भाव जीव करे अरे! जीव तेहनो कर्ता बने;
कर्ता थतां, पुद्गल स्वयं त्यां कर्मरूपे परिणमे. ६१.

अर्थ :—आत्मा जो भावको करता है वह भावका स्वयम् कर्ता होता है; वह कर्ता होनेसे पुद्गलद्रव्य स्वयम् कर्मरुप परिणमता है।

जदि सो परदव्वाणि य करेज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज ।
जम्हा ण तम्मओ तेण सो ण तेसिं हवदि कत्ता ॥ ९९ ॥

परद्रव्यने जीव जो करे तो जरूर तन्मय ते बने,
पण ते नथी तन्मय अरे! तेथी नहीं कर्ता ठरे. ६६.

अर्थ :—यदि आत्मा परद्रव्योंको करे तो वह नियमसे तन्मय अर्थात् परद्रव्यमय हो जाय, लेकिन तन्मय नहीं है, इसलिये आत्मा उनका कर्ता नहीं है।

जं भावं सुहमसुहं करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता ।
तं तस्स होदि कम्मं सो तस्स दु वेदगो अप्पा ॥ १०२ ॥

जे भाव जीव करे शुभाशुभ तेहनो कर्ता खरे,
तेनुं बने ते कर्म, आत्मा तेहनो वेदक बने. १०२.

अर्थ :—आत्मा जो शुभ के अशुभ (स्वयंके) भावको करता है.....वह भावका आत्मा वास्तवमें कर्ता होता है, वह (भाव) आत्माका कर्म होता है और वह आत्मा उसका (उस भावरुप कर्मका) भोक्ता होता है।

जो जम्हि गुणे दव्वे सो अण्णम्हि दु ण संकमदि दव्वे ।
सो अण्णमसंकंतो कह तं परिणामए दव्वं ॥ १०३ ॥

जे द्रव्य जे गुण–द्रव्यमां, नहि अन्य द्रव्ये संक्रमे;
अणसंक्रम्युं ते केम अन्य परिणमावे द्रव्यने? १०३.

अर्थ :—जो वस्तु (अर्थात् द्रव्य) जिस द्रव्यमें और गुणमें वर्तती है, वह अन्य द्रव्यरुप तथा गुणरुप संक्रमण नहीं होती (अर्थात् पलटकर अन्य में मिलती नहीं); अन्यरुप संक्रमण नहीं होती हुई वह (वस्तु), अन्य वस्तुको कैसे परिणमित कर सके?

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स कम्मस्स ।
णाणिस्स स णाणमओ अण्णाणमओ अणाणिस्स ॥ १२६ ॥

जे भावने आत्मा करे, कर्ता बने ते कर्मनो;
ते ज्ञानमय छे ज्ञानीनो, अज्ञानमय अज्ञानीनो. १२६.

अर्थ :—आत्मा जो भावको करता है, उस भावरुप कर्मका वह कर्ता होता है; ज्ञानीको तो वो भाव ज्ञानमय है और अज्ञानीको अज्ञानमय है।

णाणमया भावाओ णाणमओ चेव जायदे भावो ।
जम्हा तम्हा णाणिस्स सव्वे भावा हु णाणमया ॥ १२८ ॥

अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायदे भावो ।
जम्हा तम्हा भावा अण्णाणमया अणाणिस्स ॥ १२९ ॥

वळी ज्ञानमय को भावमांथी ज्ञानभाव ज ऊपजे,
ते कारणे ज्ञानी तणा सौ भाव ज्ञानमयी खरे; १२८.

अज्ञानमय को भावथी अज्ञानभाव ज ऊपजे,
ते कारणे अज्ञानीना अज्ञानमय भावो बने. १२९.

अर्थ :—क्योंकि ज्ञानमय भावमेंसे ज्ञानमय ही भाव उत्पन्न होता है, इसलिये ज्ञानीके सर्व भाव वास्तवमें ज्ञानमय ही होते है। और क्योंकि अज्ञानमय भावमेंसे अज्ञानमय ही भाव उत्पन्न होता है, इसलिये अज्ञानीके (सभी) भाव अज्ञानमय ही होते है।

कणयमया भावादो जायंते कुंडलादओ भावा ।
अयमयया भावादो जह जायंते दु कडयादी ॥ १३० ॥

अण्णाणमया भावा अणाणिणो बहुविहा वि जायंते ।
णाणिस्स दु णाणमया सव्वे भावा तहा होंति ॥ १३१ ॥

ज्यम कनकमय को भावमांथी कुंडलादिक ऊपजे,
पण लोहमय को भावथी कटकादि भावो नीपजे; १३०.

त्यम भाव बहुविध ऊपजे अज्ञानमय अज्ञानीने,
पण ज्ञानीने तो सर्व भावो ज्ञानमय अेम ज बने. १३१.

अर्थ :—जैसे स्वर्णमय भावमेंसे स्वर्णमय कुण्डल इत्यादि भाव होते हैं और लोहमय भावमेंसे लोहमय कड़ा इत्यादि भाव होते हैं, उसीप्रकार अज्ञानीके (अज्ञानमय भावमेंसे) अनेक प्रकाके अज्ञानमय भाव होते हैं और ज्ञानीके (ज्ञानमय भावमेंसे) सभी ज्ञानमय भाव होते हैं।

३. पुण्य और पापका स्वरूप

कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चावि जाणह सुसीलं ।
कह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि ॥ १४५ ॥

छे कर्म अशुभ कुशील ने जाणो सुशील शुभकर्मने !
ते केम होय सुशील जे संसारमां दाखल करे ? १४५.

अर्थ :—अशुभ कर्म कुशील है (–बुरा है) और शुभ कर्म सुशील है (–अच्छा है) ऐसा तुम जानते हो ! (किन्तु) वह सुशील कैसे हो सकता है, जो (जीवको) संसारमें प्रवेश कराता है ?

सोवण्णियं पि णियलं बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं ।
बंधदि एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं ॥ १४६ ॥

ज्यम लोहनुं त्यम कनकनुं जंजीर जकडे पुरुषने,
अेवी रीते शुभ के अशुभ कृत कर्म बांधे जीवने. १४६.

अर्थ :—जैसे सोनेकी बेड़ी भी पुरुषको बाँधती है और लोहेकी भी बाँधती है, इसीप्रकार शुभ तथा अशुभ किया हुआ कर्म जीवको (अविशेषतया) बाँधता है।

परमट्ठम्हि दु अठिदो जो कुणदि तवं वदं च धारेदि।
तं सव्वं बालतवं बालवदं बेंति सव्वण्हू ॥ १५२ ॥

परमार्थमां अणस्थित जे तपने करे, व्रतने धरे,
सघळुंय ते तप बाळ ने व्रत बाळ सर्वज्ञो कहे. १५२.

अर्थ :—परमार्थमें अस्थित जो जीव तप करता है और व्रत धारण करता है, उसके उन सब तप और व्रतको सर्वज्ञदेव बालतप और बालव्रत कहते हैं।

वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता।
परमट्ठबाहिरा जे णिव्वाणं ते ण विंदंति ॥ १५३ ॥

व्रतनियमने धारे भले, तपशीलने पण आचरे,
परमार्थथी जे बाह्य ते निर्वाणप्राप्ति नहीं करे. १५३.

अर्थ :—व्रत और नियमोंको धारण करते हुए भी तथा शील और तप करते हुए भी जो परमार्थसे बाह्य हैं (अर्थात् परम पदार्थरुप ज्ञानको–ज्ञानस्वरुप आत्मा का जिसको श्रद्धान नहीं है), वे निर्वाणको प्राप्त नहीं होते।

परमट्ठबाहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति।
संसारगमणहेदुं पि मोक्खहेदुं अजाणंता ॥ १५४ ॥

परमार्थबाह्य जीवो अरे! जाणे न हेतु मोक्षनो,
अज्ञानथी ते पुण्य इच्छे हेतु जे संसारनो. १५४.

अर्थ :—जो परमार्थसे बाह्य हैं वे मोक्षके हेतुको न जानते हुए–पुण्य संसारगमनका हेतु होने पर भी अज्ञानसे पुण्यको (मोक्षका हेतु समझकर) चाहते हैं।

सो सव्वणाणदरिसी कम्मरएण णियेणावच्छण्णो ।
संसारसमावण्णो ण विजाणदि सव्वदो सव्वं ॥ १६० ॥

ते सर्वज्ञानी-दर्शी पण निज कर्मरज-आच्छादने,
संसारप्राप्त न जाणतो ते सर्व रीते सर्वने. १६०.

अर्थ :—वह आत्मा (स्वभावसे) सर्वको जानने–देखनेवाला है तथापि अपने कर्ममलसे लिप्त होता हुआ–व्याप्त होता हुआ संसारको प्राप्त हुआ, वह सर्व प्रकारसे सर्वको नहीं जानता।

❀

४. आस्त्रवका स्वरुप

[जीवमें होते विकारी भावो (आस्त्रव) त्यागने योग्य है, ऐसा बतानेवाला स्वरुप]

मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य सण्णसण्णा दु ।
बहुविहभेया जीवे तस्सेव अणण्णपरिणामा ॥ १६४ ॥
णाणावरणादीयस्स ते दु कम्मस्स कारणं होंति ।
तेसिं पि होदि जीवो य रागदोसादिभावकरो ॥ १६५ ॥

मिथ्यात्व ने अविरत, कषायो, योग संज्ञ असंज्ञ छे,
अे विविध भेदे जीवमां, जीवना अनन्य परिणाम छे; १६४.

वळी तेह ज्ञानावरणआदिक कर्मनां कारण बने,
ने तेमनुं पण जीव बने जे रागद्वेषादिक करे. १६५.

अर्थ :—मिथ्यात्व, अविरमण, कषाय और योग—यह आस्त्रव संज्ञ (चेतनके विकार) भी है और असंज्ञ (पुद्गलके विकार) भी हैं। विविध भेदवाले संज्ञ आस्त्रव–जोकि जीवमें उत्पन्न होते हैं वे–जीवके ही अनन्य परिणाम हैं। और असंज्ञ आस्त्रव ज्ञानावरणादि कर्मके कारण (निमित्त) होते हैं और उनका भी (असंज्ञ आस्त्रवोंके भी कर्मबंधका निमित्त होनेमें) रागद्वेषादि भाव करनेवाला जीव कारण (निमित्त) होता है।

जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासवाण दोण्हं पि ।
अण्णाणी ताव दु सो कोहादिसु वट्टदे जीवो ॥ ६९ ॥

कोहादिसु वट्टंतस्स तस्स कम्मस्स संचओ होदि ।
जीवस्सेवं बंधो भणिदो खलु सव्वदरिसीहिं ॥ ७० ॥

आत्मा अने आस्त्रव तणो ज्यां भेद जीव जाणे नहीं,
क्रोधादिमां स्थिति त्यां लगी, अज्ञानी अेवा जीवनी. ६९.

जीव वर्ततां क्रोधादिमां संचय करमनो थाय छे,
सहु सर्वदर्शी अे रीते बंधन कहे छे जीवने. ७०.

अर्थ :—जीव जब तक आत्मा और आस्त्रव–इन दोनोंके अंतर और भेदको नहीं जानता तब तक वह अज्ञानी रहता हुआ क्रोधादिक आस्त्रवोंमें प्रवर्तता है; क्रोधादिकमें प्रवर्तमान उसके कर्मका संचय होता है। वास्तवमें इसप्रकार जीवके कर्मोंका बन्ध सर्वज्ञ देवोंने कहा है।

जइया इमेण जीवेण अप्पणो आसवाण य तहेव ।
णादं होदि विसेसंतरं तु तइया ण बंधो से ॥ ७१ ॥

आ जीव ज्यारे आस्त्रवोनुं तेम निज आत्मा तणुं
जाणे विशेषांतर, तदा बंधन नहीं तेने थतुं. ७१.

अर्थ :—जब यह जीव आत्माका और आस्त्रवोंके अंतर और भेदको जानता है तब उसे बंध नहीं होता।

णादूण आसवाणं असुचित्तं च विवरीयभावं च ।
दुक्खस्स कारणं ति य तदो णियत्तिं कुणदि जीवो ॥ ७२ ॥

अशुचिपणुं, विपरीतता अे आस्त्रवोनां जाणीने,
वळी जाणीने दुःखकारणो, अेथी निवर्तन जीव करे. ७२.

अर्थ :—आस्त्रवोंकी अशुचिता और विपरीतता तथा वे दुःखके कारण हैं, ऐसा जानकर जीव उनसे निवृत्ति करता है।

जीवणिबद्धा एदे अधुव अणिच्चा तहा असरणा य ।
दुक्खा दुक्खफल त्ति य णादूण णिवत्तदे तेहिं ॥७४॥

आ सर्व जीवनिबद्ध, अध्रुव, शरणहीन, अनित्य छे,
अे दुःख, दुःखफळ जाणीने अेनाथी जीव पाछो वळे. ७४.

अर्थ :—यह आस्रव जीवके साथ निबद्ध है, अध्रुव हैं, अनित्य हैं तथा अशरण हैं और वे दुःख रुप हैं, दुःख ही जिनका फल है ऐसे हैं– ऐसा जानकर ज्ञानी उनसे निवृत्त होता है।

५. संवर का स्वरूप

[जीवके शुभाशुभ भावोंको कैसे रोकाना वह बतानेवाला स्वरूप]

उवओगे उवओगो कोहादिसु णत्थि को वि उवओगो ।
कोहो कोहे चेव हि उवओगे णत्थि खलु कोहो ॥१८१॥

उपयोगमां उपयोग, को उपयोग नहि क्रोधादिमां,
छे क्रोध क्रोध महीं ज, निश्चय क्रोध नहि उपयोगमां. १८१.

अर्थ :—उपयोग उपयोगमें है, क्रोधादिमें कोई भी उपयोग नहीं है; और क्रोध क्रोधमें ही है, उपयोगमें निश्चयसे क्रोध नहीं है।

जह कणयमग्गितवियं पि कणयभावं ण तं परिच्चयदि ।
तह कम्मोदयतविदो ण जहदि णाणी दु णाणित्तं ॥१८४॥

ज्यम अग्नितप्त सुवर्ण पण निज स्वर्णभाव नहीं तजे,
त्यम कर्मउदये तप्त पण ज्ञानी न ज्ञानीपणुं तजे. १८४.

अर्थ :—जैसे सुवर्ण अग्निसे तप्त होता हुआ भी अपने सुवर्णत्वको नहीं छोड़ता, इसीप्रकार ज्ञानी कर्मके उदयसे तप्त होता हुआ भी ज्ञानित्वको नहीं छोड़ता।

सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धं चेवप्पयं लहदि जीवो ।
जाणंतो दु असुद्धं असुद्धमेवप्पयं लहदि ॥ १८६ ॥

जे शुद्ध जाणे आत्मने ते शुद्ध आत्म ज मेळवे;
अणशुद्ध जाणे आत्मने अणशुद्ध आत्म ज ते लहे. १८६.

अर्थ :—शुद्ध आत्माको जानता हुआ–अनुभव करता हुआ जीव शुद्ध आत्माको ही प्राप्त करता है और अशुद्ध आत्माको जानता हुआ–अनुभवता हुआ जीव अशुद्ध आत्मा को ही प्राप्त करता है।

अप्पाणमप्पणा रुंधिऊण दोपुण्णपावजोगेसु ।
दंसणणाणम्हि ठिदो इच्छाविरदो य अण्णम्हि ॥ १८७ ॥
जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा ।
ण वि कम्मं णोकम्मं चेदा चिंतेदि एयत्तं ॥ १८८ ॥
अप्पाणं झायंतो दंसणणाणमओ अणण्णमओ ।
लहदि अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मपविमुक्कं ॥ १८९ ॥

पुण्यपापयोगथी रोकीने निज आत्मने आत्मा थकी,
दर्शन अने ज्ञाने ठरी, परद्रव्यइच्छा परिहरी. १८७.
जे सर्वसंगविमुक्त, ध्यावे आत्मने आत्मा वडे,–
–नहि कर्म के नोकर्म, चेतक चेततो अेकत्वने, १८८.
ते आत्म ध्यातो, ज्ञानदर्शनमय, अनन्यमयी खरे,
बस अल्प काळे कर्मथी प्रविमुक्त आत्माने वरे. १८९.

अर्थ :—आत्माको आत्माके द्वारा दो पुण्य–पापरुप शुभाशुभ योगोंसे रोककर दर्शनज्ञानमें स्थित होता हुआ और अन्य (वस्तु)की इच्छासे विरत होता हुआ, जो आत्मा (इच्छारहित होनेसे) सर्वसंगसे रहित होता हुआ, (अपने) आत्माको आत्माके द्वारा ध्याता है, कर्म तथा नोकर्मको नहीं ध्याता, एवं (स्वयं) चेतयिता[1] (होनेसे) एकत्वको ही चिंतवन करता है–चेतता है–अनुभव करता है, वह (आत्मा) आत्माको ध्याता हुआ, दर्शनज्ञानमय और अनन्यमय[2] होता हुआ अल्प कालमें ही कर्मोसे रहित आत्माको प्राप्त करता है।

१. चेतयिता = चेतनार, देखनार जानना । २. अनन्यमय = अन्यमय नही है ऐसा ।

६. निर्जरा का स्वरूप

[संवरपूर्वक जो पूर्वके विकारी भावोंको तथा पूर्वे बांधे हुए कर्मोंको नष्ट करता है, उसे निर्जरा कहते है–यह बतानेवाला स्वरुप।]

उदयविवागो विविहो कम्माणं वण्णिदो जिणवरेहिं ।
ण दु ते मज्झ सहावा जाणगभावो दु अहमेक्को ॥ १९८॥

कर्मो तणो जे विविध उदयविपाक जिनवर वर्णव्यो,
ते मुज स्वभावो छे नहीं, हुं अेक ज्ञायकभाव छुं. १९८.

अर्थ :—कर्मोके उदयका विपाक (फल) जिनेन्द्रदेवोंने अनेक प्रकारका कहा है वे मेरे स्वभाव नहीं है; मैं तो एक ज्ञायकभाव हूँ।

पोग्गलकम्मं रागो तस्स विवागोदओ हवदि एसो ।
ण दु एस मज्झ भावो जाणगभावो हु अहमेक्को ॥ १९९॥

पुद्गलकरमरूप रागनो ज विपाकरूप छे उदय आ,
आ छे नहीं मुज भाव, निश्चय अेक ज्ञायकभाव छुं. १९९.

अर्थ :—राग पुद्गलकर्म है, उसका विपाक रुप उदय यह है, यह मेरा भाव नहीं है, मैं तो निश्चयसे एक ज्ञायकभाव हूँ।

एवं सम्मद्दिट्ठी अप्पाणं मुणदि जाणगसहावं।
उदयं कम्मविवागं च मुयदि तच्चं वियाणंतो ॥ २००॥

सुदृष्टि अे रीत आत्मने ज्ञायकस्वभाव ज जाणतो,
ने उदय कर्मविपाकरूप ते तत्त्वज्ञायक छोडतो. २००.

अर्थ :—इसप्रकार सम्यग्दृष्टि आत्माको (अपनेको) ज्ञायकस्वभाव जानता है और तत्त्वको अर्थात् यथार्थ स्वरूपको जानता हुआ कर्मके विपाकरुप उदयको छोड़ता है।

परमाणुमित्तयं पि हु रागादीणं तु विज्जदे जस्स।
ण वि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागमधरो वि ॥ २०१॥

अणुमात्र पण रागादिनो सद्भाव वर्ते जेहने,
ते सर्वआगमधर भले पण जाणतो नहि आत्मने. २०१.

अर्थ :—वास्तवमें जिस जीवके परमाणु मात्र–लेशमात्र–भी रागादिक वर्तता है, वह जीव भले ही सर्वागमका धारी (समस्त आगमोंको पढ़ा हुआ) हो तथापि आत्माको नहीं जानता।

मज्झं परिग्गहो जदि तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज।
णादेव अहं जम्हा तम्हा ण परिग्गहो मज्झ ॥ २०८॥

परिग्रह कदी मारो बने तो हुं अजीव बनुं खरे,
हुं तो खरे ज्ञाता ज, तेथी नहि परिग्रह मुज बने. २०८.

अर्थ :—यदि परद्रव्य–परिग्रह मेरा हों तो मैं अजीवत्वको प्राप्त हो जाऊँ। क्योंकि मैं तो ज्ञाता ही हूँ, इसलिये (परद्रव्यरुप) परिग्रह मेरा नहीं है।

छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं।
जम्हा तम्हा गच्छदु तह वि हु ण परिग्गहो मज्झ ॥ २०९॥

छेदाव, वा भेदाव, को लई जाव, नष्ट बनो भले,
वा अन्य को रीत जाव, पण परिग्रह नथी मारो खरे. २०९.

अर्थ :— छिद जावे अथवा भिद जावे अथवा कोई ले जाये, अथवा नष्ट हो जाये; अथवा चाहे जिस प्रकारसे चला जाये, फिर भी वास्तवमें परिग्रह मेरा नहीं है।

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदे धम्मं ।
अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥ २१०॥

अनिच्छक कह्यो अपरिग्रही, ज्ञानी न इच्छे पुण्यने,
तेथी न परिग्रही पुण्यनो ते, पुण्यनो ज्ञायक रहे. २१०.

अर्थ :—अनिच्छकको अपरिग्रही कहा है और ज्ञानी धर्मको (पुण्यको) नहीं चाहता, इसलिये वह धर्मका परिग्रही नहीं है, (किन्तु) (धर्मका) ज्ञायक ही है।

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदि अधम्मं ।
अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥ २११ ॥

अनिच्छक कह्यो अपरिग्रही, ज्ञानी न इच्छे पापने,
तेथी न परिग्रही पापनो ते, पापनो ज्ञायक रहे. २११.

अर्थ :—अनिच्छकको अपरिग्रही कहा है और ज्ञानी अधर्मको (पापको) नहीं चाहता, इसलिये वह अधर्मका परिग्रही नहीं है, (किन्तु) (अधर्मका) ज्ञायक ही है।

सम्मादिट्ठी जीवा णिस्संका होंति णिब्भया तेण ।
सत्तभयविप्पमुक्का जम्हा तम्हा दु णिस्संका ॥ २२८ ॥

सम्यक्त्ववंत जीवो निःशंकित, तेथी छे निर्भय अने
छे सप्तभयप्रविमुक्त जेथी, तेथी ते निःशंक छे. २२८.

अर्थ :—सम्यग्दृष्टि जीव निःशंक होते है, इसलिये निर्भय होते है; और क्योंकि वे सप्त भयसे रहित होते है, इसलिये निःशंक होते हैं (–अडोल होते हैं)।

जो चत्तारि वि पाए छिंददि ते कम्मबंधमोहकरे ।
सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २२९ ॥

जे कर्मबंधनमोहकर्ता पाद चारे छेदतो,
चिन्मूर्ति ते शंकारहित समकितदृष्टि जाणवो. २२९.

अर्थ :—जो [1]चेतयिता, कर्मबंध सम्बन्धी मोह करनेवाले (अर्थात् जीव निश्चयतः कर्मके द्वारा बंधा हुआ है ऐसा भ्रम करनेवाले) मिथ्यात्वादि भावरुप चारों पादोंको छेदता है, उसको निःशंक सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

१ चेतयिता = चेतनेवाला, जानने–देखनेवाला; आत्मा

जो दु ण करेदि कंखं कम्मफलेसु तह सव्वधम्मेसु ।
सो णिक्कंखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २३० ॥

जे कर्मफळ ने सर्व धर्म तणी न कांक्षा राखतो,
चिन्मूर्ति ते कांक्षारहित समकितदृष्टि जाणवो. २३०.

अर्थ :—जो चेतयिता कर्मोंके फलोंके प्रति तथा सर्व धर्मोंके प्रति कांक्षा नहीं करता उसको निष्कांक्ष सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

जो ण करेदि दुगुंछं चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं ।
सो खलु णिव्विदिगिच्छो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २३१ ॥

सौ कोई धर्म विषे जुगुप्साभाव जे नहि धारतो,
चिन्मूर्ति निर्विचिकित्स समकितदृष्टि निश्चय जाणवो. २३१

अर्थ :—जो चेतयिता सभी धर्मों (वस्तुके स्वभावों) के प्रति जुगुप्सा (ग्लानि) नहीं करता, उसको निश्चयसे निर्विचिकित्स (विचिकित्सा दोषसे रहित) सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

जो हवदि असम्मूढो चेदा सद्दिट्ठि सव्वभावेसु ।
सो खलु अमूढदिट्ठी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २३२ ॥

संमूढ नहि जे सर्व भावे,–सत्यदृष्टि धारतो,
ते मूढदृष्टिरहित समक्तिदृष्टि निश्चय जाणवो. २३२.

अर्थ :—जो चेतयिता समस्त भावोंमें अमूढ़ है–यथार्थ दृष्टिवाला है, उसको निश्चयसे अमूढ़दृष्टि सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

जो सिद्धभत्तिजुत्तो उवगूहणगो दु सव्वधम्माणं ।
सो उवगूहणकारी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २३३ ॥

जे सिद्धभक्तिसहित छे, उपगूहक छे सौ धर्मनो,
चिन्मूर्ति ते उपगूहनकर समकितदृष्टि जाणवो. २३३.

अर्थ :—जो (चेतयिता) सिद्धकी (शुद्धात्माकी) भक्तिसे युक्त है और

पर वस्तुके सर्व धर्मों को गोपनेवाला है (अर्थात् रागादि परभावोंमें युक्त नहीं होता) उसको उपगूहन करनेवाला सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

उम्मग्गं गच्छंतं सगं पि मग्गे ठवेदि जो चेदा।
सो ठिदिकरणाजुत्तो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २३४ ॥

उन्मार्गगमने स्वात्मने पण मार्गमां जे स्थापतो,
चिन्मूर्ति ते स्थितिकरणयुत समकितदृष्टि जाणवो. २३४.

अर्थ :—जो चेतयिता उन्मार्गमें जाते हुए अपने आत्माको भी मार्गमें स्थापित करता है, वह स्थितिकरणयुक्त सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

जो कुणदि वच्छलत्तं तिण्हं साहूण मोक्खमग्गम्हि।
सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २३५ ॥

जे मोक्षमार्गे 'साधु'त्रयनुं वत्सलत्व करे अहो!
चिन्मूर्ति ते वात्सल्ययुत समकितदृष्टि जाणवो. २३५.

अर्थ :—जो (चेतयिता) मोक्षमार्गमें स्थित सम्यग्दर्शन–ज्ञानचारित्ररुप तीन साधकों–साधनोंके प्रति (अथवा व्यवहारसे आचार्य–उपाध्याय और मुनि–इन तीन साधुओंके प्रति) वात्सल्य करता है, वह वत्सलभावसे युक्त सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

विज्जारहमारूढो मणोरहपहेसु भमइ जो चेदा।
सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २३६ ॥

चिन्मूर्ति मन-रथपंथमां विद्यारथारूढ घूमतो,
ते जिनज्ञानप्रभावकर समकितदृष्टि जाणवो. २३६.

अर्थ :—जो चेतयिता विद्यारुप रथ पर आरुढ़ हुआ (चढ़ा हुआ) मनरुप रथके पथमें (ज्ञानरुप रथके चलनेके मार्गमें) भ्रमण करता है, वह जिनेन्द्र भगवानके ज्ञानकी प्रभावना करनेवाला सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

❀

७. बंधका स्वरूप

[जीवको रागद्वेषसे बंध होता है, इसलिये बंध त्यागने योग्य हैं, वह बतानेवाला स्वरुप]

जो मण्णदि हिंसामि य हिंसिज्जामि य परेहिं सत्तेहिं ।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥ २४७॥

जे मानतो–हुं मारुं ने पर जीव मारे मुजने,
ते मूढ छे, अज्ञानी छे, विपरीत अेथी ज्ञानी छे. २४७.

अर्थ :—जो यह मानता है कि 'मैं पर जीवोंको मारता हूँ और पर जीव मुझे मारते हैं'—वह मूढ़ (–मोही) है, अज्ञानी हैं और इससे विपरीत (जो ऐसा नहीं मानता वह) ज्ञानी हैं।

जो ण मरदि ण य दुहिदो सो वि य कम्मोदएण चेव खलु ।
तम्हा ण मारिदो णो दुहाविदो चेदि ण दु मिच्छा ॥ २५८॥

वळी नव मरे, नव दुखी बने, ते कर्मना उदये खरे,
'में नव हण्यो, नव दुःखी कर्यो'–तुज मत शुं नहि मिथ्या खरे? २५८.

अर्थ :—और जो न मरता है और न दुःखी होता है, वह भी वास्तवमें कर्मोदयसे ही होता है; इसलिये ''मैंने नहीं मारा, मैंने दुःखी नहीं किया'' ऐसा तेरा अभिप्राय क्या वास्तवमें मिथ्या नहीं है ?

एसा दु जा मदी दे दुक्खिदसुहिदे करेमि सत्ते त्ति ।
एसा दे मूढमदी सुहासुहं बंधदे कम्मं ॥ २५९॥

आ बुद्धि जे तुज–'दुःखित तेम सुखी करुं छुं जीवने',
ते मूढ मति तारी अरे! शुभ-अशुभ बांधे कर्मने. २५९.

अर्थ :—तेरी यह जो बुद्धि है, कि मैं जीवों को दुःखी–सुखी करता हूँ, यही तेरी मूढ़बुद्धि ही (मोहस्वरूप बुद्धि ही) शुभाशुभ कर्मको बाँधती है।

अज्झवसिदेण बंधो सत्ते मारेउ मा व मारेउ।
एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स ॥ २६२॥

मारो–न मारो जीवने, छे बंध अध्यवसानथी,
–आ जीव केरा बंधनो संक्षेप निश्चयनय थकी. २६२.

अर्थ :—जीवोंको मारो अथवा न मारो–कर्मबंध अध्यवसानसे ही होता है। यह निश्चयनयसे जीवोंके बंधका संक्षेप है।

अज्झवसाणणिमित्तं जीवा बज्झंति कम्मणा जदि हि।
मुच्चंति मोक्खमग्गे ठिदा य ता किं करेसि तुमं ॥ २६७॥

सौ जीव अध्यवसानकारण कर्मथी बंधाय ज्यां
ने मोक्षमार्गे स्थित जीवो मुकाय, तुं शुं करे भला? २६७.

अर्थ :—हे भाई! यदि वास्तवमें अध्यवसानके निमित्तसे जीव कर्मसे बंधते हैं और मोक्षमार्गमें स्थित छूटते हैं, तो तू क्या करता है? (तेरा तो बाँधने–छोड़नेका अभिप्राय व्यर्थ गया।)

सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण तिरियणेरइए।
देवमणुए य सव्वे पुण्णं पावं च णेयविहं ॥ २६८॥

धम्माधम्मं च तहा जीवाजीवे अलोगलोगं च।
सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण अप्पाणं ॥ २६९॥

तिर्यंच, नारक, देव, मानव, पुण्य–पाप विविध जे,
ते सर्वरूप निजने करे छे जीव अध्यवसानथी. २६८.

वळी अेम धर्म-अधर्म, जीव-अजीव, लोक-अलोक जे,
ते सर्वरूप निजने करे छे जीव अध्यवसानथी. २६९.

अर्थ :—जीव अध्यवसानसे तिर्यंच, नारक, देव और मनुष्य इन सर्व पर्यायों तथा अनेक प्रकारके पुण्य और पाप–इन सबरुप अपनेको करता है। और इसीप्रकार जीव अध्यवसानसे धर्म–अधर्म, जीव–अजीव और लोक–अलोक–इन सबरुप अपनेको करता है।

एदाणि णत्थि जेसिं अज्झवसाणाणि एवमादीणि ।
ते असुहेण सुहेण व कम्मेण मुणी ण लिप्पंति ॥ २७० ॥

अे आदि अध्यवसान विधविध वर्ततां नहि जेमने,
ते मुनिवरो लेपाय नहि शुभ के अशुभ कर्मो वडे. २७०.

अर्थ :—यह (पूर्व कथित) तथा ऐसे और भी अध्यवसान जिनके नहीं है, वे मुनि अशुभ या शुभ कर्मसे लिप्त नहीं होते।

एवं ववहारणओ पडिसिद्धो जाण णिच्छयणएण ।
णिच्छयणयासिदा पुण मुणिणो पावंति णिव्वाणं ॥ २७२ ॥

व्यवहारनय अे रीत जाण निषिद्ध निश्चयनय थकी;
निश्चयनयाश्रित मुनिवरो प्राप्ति करे निर्वाणनी. २७२.

अर्थ :—इसप्रकार (पराश्रित) व्यवहारनय निश्चयनयके द्वारा निषिद्ध जान; निश्चयनयके आश्रित मुनि निर्वाणको प्राप्त होते हैं।

वदसमिदीगुत्तीओ सीलतवं जिणवरेहि पण्णत्तं ।
कुव्वंतो वि अभव्वो अण्णाणी मिच्छदिट्ठी दु ॥ २७३ ॥

जिनवरकहेलां व्रत, समिति, गुप्ति, वळी तप-शीलने
करतां छतांय अभव्य जीव अज्ञानी मिथ्यादृष्टि छे. २७३.

अर्थ :—जिनवरोंके द्वारा कथित व्रत, समिति, गुप्ति, शील और तप करता हुआ भी अभव्य जीव अज्ञानी और मिथ्यादृष्टि है।

आदा खु मज्झ णाणं आदा मे दंसणं चरित्तं च ।
आदा पच्चक्खाणं आदा मे संवरो जोगो ॥ २७७ ॥

मुज आत्म निश्चय ज्ञान छे, मुज आत्म दर्शन-चरित छे,
मुज आत्म प्रत्याख्यान ने मुज आत्म संवर-योग छे. २७७.

अर्थ :—निश्चयसे मेरा आत्मा ही ज्ञान है, मेरा आत्मा ही दर्शन और चारित्र है, मेरा आत्मा ही प्रत्याख्यान है, मेरा आत्मा ही संवर और योग (–समाधि, ध्यान) है।

८. मोक्ष का स्वरूप

[जीवकी संपूर्ण पवित्रता बतानेवाला स्वरूप]

बंधाणं च सहावं वियाणिदुं अप्पणो सहावं च।
बंधेसु जो विरज्जदि सो कम्मविमोक्खणं कुणदि ॥ २९३ ॥

बंधो तणो जाणी स्वभाव, स्वभाव जाणी आत्मनो,
जे बंध मांही विरक्त थाये, कर्ममोक्ष करे अहो! २९३.

अर्थ :—बन्धोंके स्वभावको और आत्माके स्वभावको जानकर बन्धोंके प्रति जो विरक्त होता है, वह कर्मोंसे मुक्त होता है।

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं।
पण्णाछेदणएण दु छिण्णा णाणत्तमावण्णा ॥ २९४ ॥

जीव बंध बन्ने, नियत निज निज लक्षणे छेदाय छे;
प्रज्ञाछीणी थकी छेदतां बन्ने जुदा पडी जाय छे. २९४.

अर्थ :—जीव तथा बन्ध नियत स्वलक्षणोंसे (अपने–अपने निश्चित लक्षणोंसे) छेदे जाते हैं; प्रज्ञारुप छेनीके द्वारा छेदे जाने पर वे नानापन को प्राप्त होते हैं अर्थात् अलग हो जाते हैं।

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं।
बंधो छेदेदव्वो सुद्धो अप्पा य घेत्तव्वो ॥ २९५ ॥

जीव बंध ज्यां छेदाय अे रीत नियत निज निज लक्षणे,
त्यां छोडवो अे बंधने, जीव ग्रहण करवो शुद्धने. २९५.

अर्थ :—इसप्रकार जीव और बन्ध अपने निश्चित स्वलक्षणोंसे छेदे जाते हैं। वहाँ, बन्धको छेदना चाहिए अर्थात् छोड़ना चाहिए और शुद्ध आत्माको ग्रहण करना चाहिए।

जो ण कुणदि अवराहे सो णिस्संको दु जणवदे भमदि।
ण वि तस्स बज्झिदुं जे चिंता उप्पज्जदि कयाइ ॥ ३०२ ॥

एवम्हि सावराहो बज्झामि अहं तु संकिदो चेदा।
जइ पुण णिरावराहो णिस्संकोहं ण बज्झामि ॥ ३०३ ॥

अपराध जे करतो नथी, निःशंक लोक विषे फरे,
'बंधाउं हुं' अेवी कदी चिंता न थाये तेहने. ३०२.

त्यम आतमा अपराधी 'हुं बंधाउं' अेम सशंक छे,
ने निरपराधी जीव 'नहि बंधाउं' अेम निःशंक छे. ३०३.

अर्थ :—जो पुरुष अपराध नहीं करता वह लोकमें निशंक घूमता है, क्योंकि उसे बँधनेकी चिन्ता कभी भी उत्पन्न नहीं होती। इसीप्रकार अपराधी आत्मा 'मैं अपराधी हूँ, इसलिये मैं बँधूँगा' इसप्रकार शंकित होता है और यदि अपराध रहित (आत्मा) हो तो 'मैं नहीं बँधूँगा' इसप्रकार निशंक होता है।

*

६. सर्व विशुद्ध ज्ञानका स्वरुप

दिट्ठी जहेव णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव।
जाणइ य बंधमोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं चेव ॥३२०॥

ज्यम नेत्र, तेम ज ज्ञान नथी कारक, नथी वेदक अरे!
जाणे ज कर्मोदय, निरजरा, बंध तेम ज मोक्षने. ३२०.

अर्थ :—जैसे नेत्र (दृश्य पदार्थोंको करता–भोगता नहीं है, किन्तु देखता ही है), उसी प्रकार ज्ञान अकारक तथा अवेदक है और बन्ध, मोक्ष, कर्मोदय तथा निर्जराको जानता ही है।

ववहारभासिदेण दु परदव्वं मम भणंति अविदिदत्था।
जाणंति णिच्छएण दु ण य मह परमाणुमित्तमवि किंचि ॥ ३२४ ॥

व्यवहारमूढ अतत्त्वविद् परद्रव्यने 'मारुं' कहे,
'परमाणुमात्र न मारुं', ज्ञानी जाणता निश्चय वडे. ३२४.

अर्थ :—जिन्होंने पदार्थके स्वरुपको नहीं जाना है, ऐसे पुरुष व्यवहारके वचनोंको ग्रहण करके 'परद्रव्य मेरा है' ऐसा कहते हैं, लेकिन ज्ञानीजन निश्चयसे जानते हैं कि 'कोई परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है'।

कम्मं जं पुव्वकयं सुहासुहमणेयवित्थरविसेसं ।
तत्तो णियत्तदे अप्पयं तु जो सो पडिक्कमणं ॥ ३८३ ॥

कम्मं जं सुहमसुहं जम्हि य भावम्हि बज्झदि भविस्सं ।
तत्तो णियत्तदे जो सो पच्चक्खाणं हवदि चेदा ॥ ३८४ ॥

जं सुहमसुहमुदिण्णं संपडि य अणेयवित्थरविसेसं ।
तं दोसं जो चेददि सो खलु आलोयणं चेदा ॥ ३८५ ॥

णिच्चं पच्चक्खाणं कुव्वदि णिच्चं पडिक्कमदि जो य ।
णिच्चं आलोचेयदि सो हु चरित्तं हवदि चेदा ॥ ३८६ ॥

शुभ ने अशुभ अनेकविध पूर्वे करेलुं कर्म जे,
तेथी निवर्ते आत्मने, ते आतमा प्रतिक्रमण छे; ३८३.

शुभ ने अशुभ भावि करम जे भावमां बंधाय छे,
तेथी निवर्तन जे करे, ते आतमा पचखाण छे; ३८४.

शुभ ने अशुभ अनेकविध छे वर्तमाने उदित जे,
ते दोषने जे चेततो, ते जीव आलोचना खरे. ३८५.

पचखाण नित्य करे अने प्रतिक्रमण जे नित्ये करे,
नित्ये करे आलोचना, ते आतमा चारित्र छे. ३८६.

अर्थ :—पूर्वकृत जो अनेक प्रकारके विस्तारवाला (ज्ञानावरणीय आदि) शुभाशुभ कर्म है; उससे जो आत्मा अपनेको दूर रखता है, वह आत्मा प्रतिक्रमण है। भविष्यकालका जो शुभ–अशुभ कर्म जिस भावमें बँधता है। उस भावसे जो आत्मा निवृत्त होता है, वह आत्मा प्रत्याख्यान है।

वर्तमानकालमें उदयागत जो अनेक प्रकारके विस्तारवाला शुभ और अशुभ कर्म है, उस दोषको जो आत्मा चेतता है–अनुभव करता है–

શ્રી દિગમ્બર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ – ૩૬૪૨૫૦

ज्ञाताभाव से जान लेता है (अर्थात् उसके स्वामित्व–कर्तृत्वको छोड़ देता है), वह आत्मा वास्तवमें आलोचना है।

जो सदा प्रत्याख्यान करता है, सदा प्रतिक्रमण करता है और सदा आलोचना करता है, वह आत्मा वास्तवमें चारित्र है।

ण वि सक्कदि धेत्तुं जं ण विमोत्तुं जं च जं परद्रव्वं।
सो को वि य तस्स गुणो पाउगिओ विस्ससो वा वि ॥ ४०६ ॥

जे द्रव्य छे पर तेहने न ग्रही, न छोडी शकाय छे,
अेवो ज तेनो गुण को प्रायोगी ने वैस्त्रसिक छे. ४०६.

अर्थ :—जो परद्रव्य है, वह ग्रहण नहीं किया जा सकता और छोड़ा नहीं जा सकता; ऐसा ही कोई उसका (–आत्माका) [1]प्रायोगिक तथा [2]वैस्त्रसिक गुण है।

मोक्खपहे अप्पाणं ठवेहि तं चेव झाहि तं चेय।
तत्थेव विहर णिच्चं मा विहरसु अण्णदव्वेसु ॥ ४१२ ॥

तुं स्थाप निजने मोक्षपंथे, ध्या, अनुभव तेहने;
तेमां ज नित्य विहार कर, नहि विहर परद्रव्यो विषे. ४१२.

अर्थ :—(हे भव्य!) तू मोक्षमार्गमें अपने आत्माको स्थापित कर, उसीका ध्यान कर, उसीको चेत-अनुभव कर और उसीमें निरन्तर विहार कर; अन्य द्रव्योंमें विहार मत कर।

❀

१–प्रायोगिक = विकारी. २ वैस्त्रसिक = शुद्ध

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

શ્રી દિગમ્બર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ – ૩૬૪૨૫૦

पाठ : ८

[मोक्षमार्गका द्वितीय रत्न सम्यग्ज्ञान है, इसलिये अब इसमें लगे हुए दोषका प्रतिक्रमण कहेंगे।]

मइसुइओहिमणपज्जयं तहा केवलं च पंचभेयं।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मि दुक्कडं हुज्ज ॥ २७॥*

अर्थ :—हे भगवान! मैंने मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और कैवल्यज्ञान वे पाँच प्रकारके ज्ञानोंमेंसे जो कोई ज्ञानकी विराधना की हो–आशातना की हो, उस संबंधी मेरे सर्वे पाप मिथ्या हो।

❀

पाठ : ९

बारह प्रकारके व्रतका स्वरूप

[१] हिंसाका स्वरूप :—

[1]आत्मपरिणामहिंसनहेतुत्वात्सर्वमेव हिंसैतत् ।
अनृतवचनादि केवलमुदाहृतं शिष्यबोधाय ॥ ४२ ॥

अर्थ :—आत्माना शुद्धोपयोगरुप परिणामो का घातनेवाला भाव, वह संपूर्ण हिंसा है, असत् वचनादिक भेदो मात्र शिष्योंको समजानेके लिए द्रष्टांतरूप कहनेमें आया है।

यत्खलु कषाययोगात्प्राणानां द्रव्यभावरूपाणाम् ।
व्यपरोपणस्य करणं सुनिश्चिता भवति सा हिंसा ॥ ४३ ॥

---

* पं. नंदलालजीकृत श्रावक प्रतिक्रमण पा. ९९

१. सम्यग्दृष्टि श्रावकको ऐसे शुभभावरूप व्रत होते हैं, मिथ्यादृष्टिको नहीं होते, क्योंकि उसके व्रतको बालव्रत कहे हैं, इसलिये उसे सत्यव्रत नहीं होते।

२. पुरूषार्थसिद्ध उपायमेंसे।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अर्थ :—यथार्थमें (वास्तवमें) कषाय सहित योगो जो द्रव्य और भावरुप दो प्रकारके प्राणोंका घात करना, वह प्रसिद्ध रीतसे तय हुई हिंसा है।

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति ।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः ॥ ४४ ॥

अर्थ :—वास्तवमें रागादि भावोंका प्रगट न होना, वह अहिंसा है और वे रागादि भावोंकी उत्पत्ति होना वह हिंसा है–यह जैन शास्त्रका संक्षिप्त रहस्य है।

[२] असत्यका स्वरुप :—

यदिदं प्रमादयोगादसदभिधानं विधीयते किमपि ।
तदनृतमपि विज्ञेयं तद्भेदाः सन्ति चत्वारः ॥ ९१ ॥

अर्थ :—प्रमाद–कषायमें युक्त होते हुए, जो कुछ भी असत् कथन करनेमें आता है, वह वास्तवमें असत्य जानना चाहिए।

[३] चोरीका स्वरुप :—

अवितीर्णस्य ग्रहणं परिग्रहस्य प्रमत्तयोगाद्यत् ।
तत्प्रत्येयं स्तेयं सैव च हिंसा वधस्य हेतुत्वात् ॥ १०२ ॥

अर्थ :—जिस प्रमाद–कषायमें युक्त होनेसे, बिना दिए सुवर्ण, वस्त्र आदि परिग्रहका ग्रहण, उसे चोरी जानना और वह घातका कारण होनेसे हिंसा है।

[४] अब्रह्मचर्यका स्वरूप :—

यद्वेदरागयोगान्मैथुनमभिधीयते तदब्रह्म ।
अवतरति तत्र हिंसा वधस्य सर्वत्र सद्भावात् ॥ १०७ ॥

अर्थ :—पुरुषवेद, स्त्रीवेद या नपुंसकवेदरुप रागमें युक्त होनेसे जिसे मैथुन कहा जाता है, वह अब्रह्मचर्य है और उसमें सर्वत्र प्राणीका घात होनेसे हिंसा होती है।

[५] परिग्रहका स्वरूप :—

या मूर्च्छा नामेयं विज्ञातव्यः परिग्रहो ह्येषः ।
मोहोदयादुदीर्णो मूर्च्छा तु ममत्वपरिणामः ॥ १११ ॥

अर्थ :—जो मूर्च्छा है वो ही परिग्रह ऐसा जानना और मोहनीय कर्मके उदयमें युक्त होनेसे, उत्पन्न हुए ममत्व रुप परिणाम वह मूर्च्छा है।

उपरोक्त पाँच अव्रत है, उनका त्याग वह व्रत है। श्रावकको एकदेश त्याग होता है और वह अणुव्रत है। उसकी प्रतिमा श्रावकको करनी चाहिए।

[६] दिग्व्रतका स्वरूप :—

प्रविधाय सुप्रसिद्धैर्मर्यादां सर्वतोप्यभिज्ञानैः ।
प्राच्यादिभ्योः दिग्भ्यः कर्तव्या विरतिरविचलिता ॥ १३७ ॥

अर्थ :—समस्त दिशाओंमें सुप्रसिद्ध ग्राम, नदी, पर्वतादि भिन्न भिन्न स्थानो तककी मर्यादा करके पूर्व इत्यादि दिशाओंमें मर्यादाके बाहिर गमन नहीं करनेकी प्रतिज्ञा करना।

[७] देशावगासिक (देश) व्रतका स्वरूप :—

तत्रापि च परिमाणं ग्रामापणभवनपाटकादीनाम् ।
प्रविधाय नियतकालं करणीयं विरमणं देशात् ॥ १३९ ॥

अर्थ :—दिग्व्रतमें तय की हुई मर्यादामें से भी ग्राम, बाजार, प्रख्यात इमारत, शेरी इत्यादिका परिमाण करके, मर्यादावाले क्षेत्र से दूर जानेका, निश्चित काल तक त्यागना चाहिए।

[८] अनर्थदंड (त्याग) व्रतका स्वरूप :—

पापर्द्धिजयपराजयसङ्गरपरदारगमनचौर्याद्याः ।
न कदाचनापि चिन्त्याः पापफलं केवलं यस्मात् ॥ १४१ ॥

अर्थ :—शिकार, जय, पराजय, युद्ध, परस्त्रीगमन, चोरी

इत्यादिकका कोई भी समय चिंतवन नहीं करना, क्योंकि वे अनिष्ट ध्यानोंका फल पाप ही है।

[९] सामायिक व्रतका स्वरूप :—

रागद्वेषत्यागान्निखिलद्रव्येषु साम्यमवलम्ब्य ।
तत्त्वोपलब्धिमूलं बहुशः सामायिकं कार्यम् ॥ १४८ ॥

अर्थ :—समस्त पदार्थो प्रति राग–द्वेषका त्याग करके समभावको ग्रहण करके, आत्मतत्त्वकी स्थिरताका मूल कारण ऐसा सामायिक बार–बार करना।

[१०] पौषधव्रतका स्वरूप :—

मुक्तसमस्तारम्भः प्रोषधदिनपूर्ववासरस्यार्द्धे ।
उपवासं गृह्णीयान्ममत्वमपहाय देहादौ ॥ १५२ ॥
श्रित्वा विविक्तवसतिं समस्तसावद्ययोगमपनीय ।
सर्वेन्द्रियार्थविरतः कायमनोवचनगुप्तिभिस्तिष्ठेत् ॥ १५३ ॥

अर्थ :—समस्त उद्यम (आरंभ)से मुक्त होकर शरीरादिकमें से आत्मबुद्धिका त्याग करके, पौषधके दिनके अगले दिनके दोपहरसे उपवास करना और पौषधके दिन एकान्त स्थानमें स्थित होकर संपूर्ण सावद्ययोगको छोड़कर सभी इन्द्रिय–विषयोंसे विरक्त होकर (का त्याग करके) तीन गुप्तिमें स्थिर होकर धर्मध्यानमें व्यतीत करना।

[११] भोग–उपभोगपरिमाण व्रतका स्वरूप :—

भोगोपभोगमूला विरताविरतस्य नान्यतो हिंसा ।
अधिगम्य वस्तुतत्त्वं स्वशक्तिमपि तावपि त्याज्यौ ॥ १६१ ॥

अर्थ :—श्रावकको भोग–उपभोगके निमित्तसे हिंसा होती है, इसलिये वस्तु–स्वरूपका ज्ञान करके अपनी शक्ति अनुसार भोग–उपभोगको छोड़ना चाहिए।

[१२] अतिथि संविभाग व्रतका स्वरूप :—

विधिना दातृगुणवता द्रव्यविशेषस्य जातरूपाय ।
स्वपरानुग्रहहेतोः कर्तव्योऽवश्यमतिथये भागः ॥ १६७ ॥

अर्थ :—दाताके गुणधारक गृहस्थका वह अवश्य कर्तव्य है कि ''निर्ग्रंथ अतिथिको (निर्ग्रंथ मुनिको) स्वके और परके उपकारके हेतुसे देने योग्य वस्तु विधिपूर्वक देना।''

❀

पाठ : १०

संलेखनाका स्वरूप

[1]मरणान्तेऽवश्यमहं विधिना सल्लेखनां करिष्यामि ।
इति भावनापरिणतोऽनागतमपि पालयेदिदं शीलम् ॥ १७६ ॥
मरणेऽवश्यं भाविनि कषायसल्लेखनातनूकरणमात्रे ।
रागादिमन्तरेण व्याप्रियमाणस्य नात्मघातोऽस्ति ॥ १७७ ॥

अर्थ :—मरणकाल मैं अवश्य विधिपूर्वक समाधिमरण करूँगा, ऐसी भावनारूप परिणति करके, मरणकाल प्राप्त होनेके पहेले ही वह संलेखना व्रत प्राप्त कर लेना चाहिए।

मरण तो अवश्य होनेवाला है, इसलिये कषायके सम्यक् प्रकारसे मंद करनेके उद्यममें प्रवृत्त पुरुषको रागादि भावोंके असद्भावके कारण आत्मघात नहीं है।

❀

१. पुरुषार्थसिद्धि उपायमेंसे

पाठ : ११
[मिथ्यात्वका स्वरूप]

[1]प्रश्न :—मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर :—मिथ्यात्वप्रकृतिके उदयमें युक्त होनेसे कुदेवमें देवबुद्धि, कुगुरुमें गुरुबुद्धि, कुशास्त्रमें शास्त्रबुद्धि, अतत्वमें तत्त्वबुद्धि, अधर्ममें (कुधर्ममें) धर्मबुद्धि इत्यादि विपरीताभिनिवेश (–अभिप्राय)रुप जीवके परिणामको मिथ्यात्व कहते है। मिथ्यात्व के पाँच भेद है :—(1) एकांतिक मिथ्यात्व, (2) विपरीत मिथ्यात्व, (3) सांशयिक मिथ्यात्व, (4) अज्ञानिक मिथ्यात्व, (5) वैनयिक मिथ्यात्व.

उपरोक्त पाँच भेदोंका स्वरुप :—

(1) पदार्थका स्वरूप अनेक धर्मोवाला होने पर भी उसे सहज धर्मवाला मानना वह एकान्तिक मिथ्यात्व है; जैसे आत्माको सर्वथा क्षणिक वा सर्वथा नित्य मानना।

(2) द्रव्यका स्वरुप जिस प्रकारसे है, उससे विपरीत प्रधानरूप विपरीत रुचिको विपरीत मिथ्यात्व कहते है; जैसे कि–शरीरको आत्मा मानना, सग्रंथको निर्ग्रंथ मानना, केवलीके स्वरुपको विपरीत प्रकारसे मानना।

(3) आत्मा स्वयंके कार्यका कर्ता होता होगा कि परवस्तुके कार्यका कर्ता होता होगा ? इत्यादि प्रकारसे संशय रहे उसे सांशयिक मिथ्यात्व कहते है।

(4) जहाँ हिताहित विवेकका कुछ भी सद्भाव न होना, उसे अज्ञानिक मिथ्यात्व कहते है, जैसे कि–पशुवधको वा पापको धर्म समजना।

(5) समस्तदेव और समस्त मतोमें समदर्शीपना [समानपना] मानना उसे वैनयिक मिथ्यात्व कहते है।

उपरोक्त प्रकारे मिथ्यात्वका स्वरुप जानकर सभी जीवोंको चाहिए कि मिथ्यात्व छोड दे।

---

१. श्री जैनसिद्धांतप्रवेशिकासे

पाठ : १२

[चार मंगल]

चत्तारी मंगलं–अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं.

चत्तारी लोगुत्तमा–अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा.

चत्तारी सरणं पव्वज्जामि–अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि.

अर्थ :—मंगलभूत पदार्थ चार ही है–अरिहंतो, सिद्ध भगवंतो, साधु और केवलिकथित धर्म।

लोकमें उत्तम भी चार ही है–अरिहंतदेवो, सिद्ध भगवंतो, साधु और केवलि प्ररुपित धर्म, इसलिये मैं वे चार अरिहंतो, सिद्धो, साधु और केवलि प्ररुपित धर्मका शरण स्वीकार करता हूँ।

* ચિદાનંદ.

पाठ : १३

क्षमापना *[खामणा]

हे भगवान! मैं बहुत भूल गया,
मैंने आपके अमूल्य बचनको
लक्षमें लिया नहीं।
आपने कहे हुए अनुपम तत्त्व का
मैंने विचार नहीं किया।
आपसे प्रणीत किया हुआ
उत्तम शीलको मैंने सेवन नहीं किया।

* श्रीमद् राजचंद्रकृत मोक्षमालामेंसे.....

आपने कह्ये हुए दया, शांति
क्षमा और पवित्रता
मैंने पहिचाना नहीं।
हे भगवंत! मैं भूला,
बहोत भूला, बहोत भटका,
और अनंत संसारकी,
विडम्बनामें (कठिनाईयोंमें) पडा हूँ।
मैं पापी हूँ, मैं बहुत मदोन्मत
और कर्मरजसे मलिन हूँ।
हे परमात्मा! आपने बताये तत्त्व बिना
मेरा मोक्ष नहीं।
मैं निरंतर प्रपंचमें पड़ा हूँ।
अज्ञानसे अंध हुआ हूँ।
मुझमें विवेक शक्ति नहीं है।
और मैं मूढ़ हूँ, निराश्रित हूँ, अनाथ हूँ।
है निरागी परमात्मा! अब मैं आपका,
आपके धर्मका और आपके मुनिका शरण ग्रहता हूँ।
मेरे अपराध क्षय होकर,
मैं वे सर्व पापसे मुक्त हो जाऊँ,
वोही मेरी अभिलाषा है।
पूर्वे किये हुए पापोंका मैं अब
पश्चात्ताप करता हूँ।
जैसे जैसे मैं सूक्ष्म विचारसे (अंतरकी) गहनतामें जाता हूँ,
वैसे वैसे आपके तत्त्वके चमत्कारो
मेरे स्वरुपका प्रकाश करता है।
आप निरागी, निर्विकारी, सच्चिदानंदस्वरुप
सहजानंदी, अनंतज्ञानी,

अनंतदर्शी और त्रैलोक्यप्रकाशक हो।
मैं सिर्फ मेरे हितके कारण
आपकी साक्षी लेकर क्षमा चाहता हूँ।
एक पलभर भी आप उपदिष्ट
तत्त्वकी शंका न होवे,
आप कथित मार्गमें दिनरात मैं रहुँ,
यही मेरी आकांक्षा और वृत्ति हो!
हे सर्वज्ञ भगवान! आपको मैं विशेष क्या कहुँ?
आपसे कुछ भी अनभिज्ञ नहीं है।
सिर्फ पश्चात्तापसे मैं कर्मजन्य पापकी क्षमा चाहता हूँ।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

पाठ : १४

क्षमापना (भाग–२)

श्री सीमंधर स्वामी, श्री युगमंधरस्वामी, श्री बाहुस्वामी, श्री सुबाहुस्वामी, श्री संजातकस्वामी, श्री स्वयंप्रभस्वामी, श्री वृषभाननस्वामी, श्री अनंतवीर्यस्वामी, श्री सूरप्रभस्वामी, श्री विशालकीर्तिस्वामी, श्री वज्रधरस्वामी, श्री चंद्राननस्वामी, श्री चंद्रबाहुस्वामी, श्री भुजंगमस्वामी, श्री ईश्वरस्वामी, श्रीनेमप्रभस्वामी, श्री वीरसेनस्वामी, श्री महाभद्रस्वामी, श्री देवयशस्वामी और श्री अजितवीर्यस्वामी–यह नामके धारक पंचमेरु संबंधी विदेहक्षेत्रमें बीस तीर्थंकर अभी बिराजमान है, उन्हें मेरा नमस्कार हो।

उनके प्रति और श्री अरिहंत, श्री सिद्ध भगवान, श्री आचार्य महाराज, श्री उपाध्याय महाराज तथा श्री निर्ग्रंथ मुनिराज और अर्जिकाप्रति, श्रावक–श्राविका प्रति, कोई भी प्रकारसे अविनय, अशातना, अभक्ति, अपराध हो गये हो उन संबंधी मैं क्षमा चाहता हूँ।

चोर्यासी लक्ष जीवयोनिके जो कोई जीवका मेरेसे घात हुआ हो, दूसरोंसे घात करवाया हो वा अनुमोदना की हो, वे सभी मेरे दुष्कृत्य मिथ्या हो।

❀

पाठ : १५

लोगस्स सूत्र

[चौबीस तीर्थंकर की स्तुति कायोत्सर्गरुपे कहनेमें आती है।]

[नमस्कार मंत्र बोलना]

(अनुष्टुप छंद)

लोगस्स उज्जोअगरे, धम्मतित्थयरे जिणे;
अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसं पि केवली. १.

(आर्या छंद)

उसभमजिअं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च;
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे. २.

सुविहिं च पुप्फदंतं, सीअलसिज्जंसवासुपुज्जं च;
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संति च वंदामि. ३.

कुंथुं अरं च मल्लि, वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च;
वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च. ४.

अेवं मअे अभिथुआ, विहुयरयमला पहीणजरमरणा;
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु. ५.

कित्तियवंदियमहिया, जे अे लोगस्स उत्तमा सिद्धा;
आरुग्गबोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दिंतु. ६.

चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा;
सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु. ७.

अर्थ :—(तीर्थंकरोंके स्तवनकी प्रतिज्ञा) स्वर्ग, मृत्यु और....पाताल–तीन जगतमें धर्मके प्रकाशको, धर्मतीर्थके स्थापको और राग–द्वेष आदि अंतरंग शत्रुओं पर विजेताओं ऐसे चौबीस केवलज्ञानी तीर्थंकरो और अन्य तीर्थंकरों का मैं स्तवन करूँगा–स्तुति करूँगा।

(स्तवनः) श्री वृषभनाराच, श्री अजितनाथ, श्री संभवनाथ, श्री अभिनंदन, श्री सुमतिनाथ, श्री पद्मप्रभ, श्री सुपार्श्वनाथ, श्री चंद्रप्रभ, श्री पुष्पदंत वा श्री सुविधिनाथ, श्री शीतलनाथ, श्री श्रेयांसनाथ, श्री वासुपूज्य, श्री विमलनाथ, श्री अनंतनाथ, श्री धर्मनाथ, श्री शांतिनाथ, श्री कुंथुनाथ, श्री अरनाथ, श्री मल्लिनाथ, श्री मुनिसुव्रत, श्री नमिनाथ, श्री अरिष्टनेमि, श्री पार्श्वनाथ, श्री वर्द्धमानस्वामी—ये चौबीस जिनेश्वरोंकी मैं स्तुति करता हूँ।

[भगवानको प्रार्थना :—] जिन्होंकी मैं स्तुति करता हूँ, जो [1]रजमलसे रहित है, जो जरा–मृत्यु से मुक्त है और जो तीर्थके प्रवर्तक है, वे चौबीस जिनेश्वरों और सामान्य केवलीभगवंतो भी मुझ पर प्रसन्न हो।

जिनका कीर्तन, वंदन और पूजन नरेन्द्रो और देवेन्द्रोने भी किया है, जो संपूर्ण लोकमें उत्तम है और जिन्होंने सिद्धि प्राप्त की है वो भगवंतो मुझे भावारोग्य (राग–द्वेष–रहितदशा) के लिए [2]बोधि और [3]समाधिका उत्तम वर दीजिये।

जो सर्व चंद्रोसे विशेष निर्मल है, सर्व सूर्योसे अधिक प्रकाशमान है और स्वयंभूरमण महासमुद्रसे अधिक गंभीर है, वो सिद्धभगवंतो मुझे सिद्धि दो।

[नमस्कार मंत्र बोलके कायोत्सर्ग पूर्ण करना]

❀

१. रज = द्रव्यकर्म, मल = भावकर्म.

२. बोधि = अप्राप्त ऐसे स. दर्शन–ज्ञान–चारित्रकी प्राप्तिका लाभ.

३. समाधि = प्राप्त स. दर्शनादिका निर्विघ्ने वहन करना।

શ્રી દિગમ્બર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ – ૩૬૪૨૫૦

पाठ : १६

प्रत्याख्यान

दिवसचरिमं पच्चक्खामि*

(सूरे उग्गअे नमोक्कारसहिअं पच्चक्खामि–जब नोकारसी करनी हो तब.)

चउव्विहं पि आहारं—असणं, पाणं, खाईमं, साईमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहस्सागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहि-वित्तियागारेणं वोसिरामि.×

अर्थ :—धारणाके अनुसार नमस्कार मंत्र के जाप तक, मैं चार प्रकारके आहार–भोजन, पान [1]खादिम और [2]स्वादिमका त्याग करता हूँ। ये आहारोंका त्याग चार [3]आगारोके साथ किया है, वे इसप्रकार [4]अनाभोग, [5]सहसाकार, [6]महत्तराकार, [7]सर्वसमाधि प्रत्याकार।

❀

पाठ : १७

नमोत्थुणं

[स्तुतिमंगल वा नमस्कार कीर्तन]

नमोत्थुणं अरिहंताणं, भगवंताणं, आईगराणं, तित्थयराणं, सयंसंबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिसवरपुंडरियाणं, पुरिस–वर–गंध–हत्थीणं; लोगुत्तमाणं, लोगनाहाणं, लोग–हिआणं, लोग–

---

* दूसरेको पच्चखाण करानेके वक्त ''पच्चक्खाई शब्द बोलना।

× दूसरेको पच्चखाण करानेके वक्त ''वोसिराई शब्द बोलना।

१. मेवो, फलं। २. मुखवास। ३. छूट। ४. जराभी याद न रहेना। ५. अकस्मात्। ६. विशेष निर्जरादि खास कारणके वश, गुरुकी आज्ञा लेकर निश्चित कालके पहले प्रतिज्ञा भंग करना वह। ७. सर्व प्रकारसे समाधि न रहेना वह।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

पइवाणं, लोग–पज्जोअगराणं, अभय–दयाणं, चक्खु–दयाणं, मग्ग–दयाणं, सरण–दयाणं, जीव–दयाणं, बोहि–दयाणं, धम्म–दयाणं, धम्म–देसियाणं, धम्म–नायगाणं, धम्म–सारहीणं, धम्म-वरचाउरंत–चक्कवटीणं, दीवोताणं, सरणगईपइट्ठा, अपडिहयवर–नाणदंसणधराणं, विअट्ट–छउमाणं, जिणाणं, जावयाणं, तिन्नाणं, तारयाणं, बुद्धाणं, बोहयाणं, मुत्ताणं, मोअगाणं, सव्वन्नूणं, सव्वदरिसीणं, सिवमलयमरुयमणंतमक्खयमव्वाबाहम-पुणरावित्ति सिद्धिगई नामधेयं, ठाणं संपत्ताणं, नमो जिणाणं, जिअभयाणं.

अर्थ :—अरिहंत भगवंतोको मेरा नमस्कार हो, जो अरिहंत भगवान अर्थात् ज्ञानवान है, द्वादशांगी धर्मकी शुरुआत करनेवाले है, तीर्थकी स्थापना करनार है, अन्यके उपदेश बिना, स्वयमेव बोधप्राप्त है; सर्व पुरुषोंमें उत्तम है; पुरुषोंमें सिंहसमान नीडर है। पुरुषोंमें पुंडरिक कमल समान अलिप्त है, पुरुषोंमें प्रधान गंधहस्ति समान शक्तिशाली है। लोकमें उत्तम है, लोकके नाथ है, लोकके हितकारी है, लोकमें दीवासमान प्रकाश करनार है, लोकमें अज्ञान अंधकारका नाश करनार है; दुःखीओंको अभयदानके दाता है; अज्ञानसे अंध लोगोंको ज्ञानरुपनेत्रका दाता है; मार्गभ्रष्टको मार्ग बतानेवाला है, शरणागतको शरण देनेवाले है; संयमरुप जीवित के दाता है, सम्यक्त्वके प्रदान करनेवाले है, धर्महीनको धर्मदान करनार है, जिज्ञासुओको धर्मका उपदेश करनेवाला है, धर्मके नायक है, धर्मके सारथि–संचालक है, धर्ममें श्रेष्ठ है तथा चक्रवर्ती समान चतुरंत है अर्थात् चारों दिशाओंके विजयी चक्रवर्ती चतुरन्त कहनेमें आते है, वैसे अरिहंत भी चार गतियोंका अंत करनेके कारण चतुरन्त कहे जाते है। भवसमुद्रमें डूब रहे जीवोंको द्वीपसमान आधार है, कर्मशत्रुसे बचावनार है, सन्मार्ग...बतानेवाले होनेसे शरणरुप है, दुःखी संसारी जीवों को आश्रयदाता होनेसे आधाररुप है, संसाररुप खड्डेमें पड़ते जीवोंके आधाररुप है, सर्वपदार्थोंके स्वरूपका प्रकाश करनेवालो श्रेष्ठ ज्ञान–दर्शन अर्थात् केवलज्ञान–केवलदर्शनके धारक है; चार घाती

कर्मरुप आवरणसे मुक्त है, स्वयं राग–द्वेषके विजेता है और अन्यों को भी राग–द्वेष जितानेवाले है, स्वयंने भवसमुद्रको पार किया है और अन्योंको भी पार पहुँचाते हैं; स्वयं ज्ञान प्राप्त हुए है और अन्योंको भी ज्ञानप्राप्त कराते है; स्वयं मुक्त है और अन्योंको भी मुक्ति प्राप्त कराते है। सर्वज्ञ है; सर्वदर्शी है; इसी कारण उपद्रवरहित, अचल, रोगरहित, अनंत, अक्षय, आकुलता–व्याकुलतारहित और पुनरागमनरहित ऐसे मोक्षस्थानको प्राप्त है।

सभी प्रकारके भयोंको जीतनार जिनेश्वरोंको नमस्कार हो!

।। इति प्रथम प्रतिक्रमण ।।

❀

स्वाध्याय वह परम तप है।

बारसविहम्मि य तवे अब्भंतरबाहिरे कुसलदिट्ठे।
ण वि अत्थि ण वि य होहिदि सज्झायसमं तवो कम्मं ।। ९ ।।

[भगवती आराधना–शिक्षाधिकार]

अर्थ :—प्रवीण पुरुष श्री गणधरदेव, उन्होंसे अवलोकन करनेमें आए हुए, जो बाह्य–अभ्यंतर बारह प्रकारके तप है, उनमें स्वाध्याय समान दूसरा तप कभी हुआ नहीं, होगा नहीं और हो नहीं रहा।

❀

दूसरा प्रतिक्रमण

संवत्सरीके दिन करनेका प्रतिक्रमण याने लघु प्रतिक्रमण :—

[श्री सद्गुरुदेवकी विनयपूर्वक आज्ञा लेकर वा उनकी अनुपस्थितिमें श्री सीमंधरप्रभुकी आज्ञा लेकर प्रतिक्रमण शुरु करना।]

❀

पाठ : १
देव-गुरु-धर्म मंगल

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥

❀

पाठ : २
दिव्यध्वनि नमस्कार

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमोनमः ॥

❀

पाठ : ३
ब्रह्मचर्य-महिमा

पात्र विना वस्तु न रहे, पात्रे आत्मिक ज्ञान;
पात्र थवा सेवो सदा, ब्रह्मचर्य मतिमान.

(श्रीमद् राजचंद्रमेंसे)

❀

શ્રી દિગમ્બર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ – ૩૬૪૨૫૦

पाठ : ४

सर्वज्ञका स्वरुप

त्रिकाल गौचर समस्त गुण–पर्यायो सहित संपूर्ण लोक और अलोकको (छह द्रव्योंको) जो प्रत्यक्ष जानते हैं वे सर्वज्ञदेव है। 302

हे सर्वज्ञके अभाववादी! यदि सर्वज्ञ नहीं है तो अतीन्द्रिय पदार्थोंको कौन जान सके?

इंद्रियज्ञान तो स्थूल पदार्थों जो इन्द्रियों के संबंधरुप वर्तमान होय, उन्हें जानता है और उनके समस्त पर्यायोंको नहीं जानता। 303

(स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षामेंसे)

जे जाणतो अहक्तने गुण, द्रव्य ने पर्ययपणे,
ते जीव जाणे आत्मने, तसु मोह पामे लय खरे. ८०.

अर्थ :—जो (जीव) अर्हंतको द्रव्यसे, गुणसे और पर्यायसे जानता है, वह (स्वयंके) आत्माको जानता है और उसका मोह अवश्य लय होता है। *(श्री प्रवचनसार)*

पाठ : ५

समयसारजी–स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! तें संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

(अनुष्टुप)

कुंदकुंद रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या.

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस–भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजली भरी भरी;
अनादिनी मूर्च्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोडे परिणति.

(शार्दूलविक्रीडित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथी साधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो.

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां, जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे.

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी.

શ્રી દિગમ્બર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ – ૩૬૪૨૫૦

पाठ : ६
श्री आत्मसिद्धिशास्त्रके कुछ पदो

जे स्वरूप समज्या विना, पाम्यो दुःख अनंत;
समजाव्युं ते पद नमुं, श्री सद्गुरु भगवंत. १.

वैराग्यादि सफळ तो, जो सह आतमज्ञान;
तेम ज आतमज्ञाननी, प्राप्ति तणां निदान. ६.

त्याग, विराग न चित्तमां, थाय न तेने ज्ञान;
अटके त्याग विरागमां, तो भूले निज भान. ७.

सेवे सद्गुरु चरणने, त्यागी दई निज पक्ष;
पामे ते परमार्थने, निजपदनो ले लक्ष. ९.

सद्गुरुना उपदेश वण, समजाय न जिनरूप;
समज्या वण उपकार शो? समज्ये जिनस्वरूप. १२.

स्वच्छंद, मत आग्रह तजी, वर्ते सद्गुरुलक्ष;
समकित तेने भाखियुं, कारण गणी प्रत्यक्ष. १७.

मानादिक शत्रु महा, निज छंदे न मराय;
जातां सद्गुरु शरणमां, अल्प प्रयासे जाय. १८.

लह्युं स्वरूप न वृत्तिनुं, ग्रह्युं व्रत अभिमान;
ग्रहे नहीं परमार्थने, लेवा लौकिक मान. २८.

अथवा निश्चय नय ग्रहे, मात्र शब्दनी मांय;
लोपे सद्व्यवहारने, साधनरहित थाय. २९.

ज्ञानदशा पामे नहीं, साधनदशा न कांई;
पामे तेनो संग जे, ते बूडे भव मांहि. ३०.

नहि कषाय उपशांतता, नहि अंतर वैराग्य;
सरळपणुं न मध्यस्थता, अे मतार्थी दुर्भाग्य. ३२.

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

अेक होय त्रण काळमां, परमारथनो पंथ;
प्रेरे ते परमार्थने, ते व्यवहार समंत. ३६.

कषायनी उपशांतता, मात्र मोक्ष-अभिलाष;
भवे खेद, प्राणीदया, त्यां आत्मार्थ निवास. ३८.

भास्यो देहाध्यासथी, आत्मा देह समान;
पण ते बन्ने भिन्न छे, प्रगट लक्षणे भान. ४९.

सर्व अवस्थाने विषे, न्यारो सदा जणाय;
प्रगटरूप चैतन्यमय, अे अेंधाण सदाय. ५४.

जड चेतननो भिन्न छे, केवळ प्रगट स्वभाव;
अेकपणुं पामे नहि, त्रणे काळ द्वयभाव. ५७.

जे संयोगो देखिये, ते ते अनुभव दृश्य;
ऊपजे नहि संयोगथी, आत्मा नित्य प्रत्यक्ष. ६४.

जडथी चेतन ऊपजे, चेतनथी जड थाय;
अेवो अनुभव कोईने, क्यारे कदी न थाय. ६५.

कोई संयोगोथी नहि, जेनी उत्पत्ति थाय;
नाश न तेनो कोईमां, तेथी नित्य सदाय. ६६.

चेतन जो निज भानमां, कर्ता आप स्वभाव;
वर्ते नहि निज भानमां, कर्ता कर्म-प्रभाव. ७८.

कर्मभाव अज्ञान छे, मोक्षभाव निजवास;
अंधकार अज्ञान सम, नाशे ज्ञानप्रकाश. ९८.

जे जे कारण बंधनां, तेह बंधनो पंथ;
ते कारण छेदक दशा, मोक्षपंथ भवअंत. ९९.

राग, द्वेष, अज्ञान अे, मुख्य कर्मनी ग्रंथ;
थाय निवृत्ति जेहथी, ते ज मोक्षनो पंथ. १००.

आत्मा सत् चैतन्यमय, सर्वाभास रहित;
जेथी केवळ पामिये, मोक्षपंथ ते रीत. १०१.

मत दर्शन आग्रह तजी, वर्ते सद्गुरुलक्ष;
लहे शुद्ध समकित ते, जेमां भेद न पक्ष. ११०.

वर्ते निजस्वभावनो, अनुभव लक्ष प्रतीत;
वृत्ति वहे निजभावमां, परमार्थे समकित. १११.

वर्धमान समकित थई, टाळे मिथ्याभास;
उदय थाय चारित्रनो, वीतरागपद वास. ११२.

केवळ निजस्वभावनुं, अखंड वर्ते ज्ञान;
कहिये केवळज्ञान ते, देह छतां निर्वाण. ११३.

कोटि वर्षनुं स्वप्न पण, जाग्रत थतां शमाय;
तेम विभाव अनादिनो, ज्ञान थतां दूर थाय. ११४.

छूटे देहाध्यास तो, नहि कर्ता तुं कर्म;
नहि भोक्ता तुं तेहनो, अे ज धर्मनो मर्म. ११५.

अे ज धर्मथी मोक्ष छे, तुं छो मोक्ष स्वरूप;
अनंत दर्शन ज्ञान तुं, अव्याबाध स्वरूप. ११६.

शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम;
बीजुं कहिये केटलुं? कर विचार तो पाम. ११७.

मोक्ष कह्यो निजशुद्धता, ते पामे ते पंथ;
समजाव्यो संक्षेपमां, सकळ मार्ग निर्ग्रंथ. १२३.

आत्मभ्रांति सम रोग नहि, सद्गुरु वैद्य सुजाण;
गुरु आज्ञा सम पथ्य नहि, औषध विचार ध्यान. १२९.

जो इच्छो परमार्थ तो, करो सत्य पुरुषार्थ;
भवस्थिति आदि नाम लई, छेदो नहि आत्मार्थ. १३०.

सर्व जीव छे सिद्धसम, जे समजे ते थाय;
सद्गुरुआज्ञा जिनदशा, निमित्त कारणमांय. १३५.

देह छतां जेनी दशा, वर्ते देहातीत;
ते ज्ञानीना चरणमां, हो वंदन अगणित. १४२.

पाठ : ७

श्री अमितगति–आचार्य–विरचित सामायिक पाठमेंसे कुछ गाथाए

(हरिगीत छंद)

+सौ प्राणी आ संसारनां, सन्मित्र मुज व्हालां थजो,
सद्गुणमां आनंद मानुं, मित्र के वेरी हजो;
दुखिया प्रति करुणा अने दुश्मन प्रति मध्यस्थता,
शुभ भावना प्रभु चार आ, पामो हृदयमां स्थिरता. १.

अति ज्ञानवंत अनंत शक्ति, दोषहीन आ आत्म छे,
अे म्यानथी तरवार पेठे, शरीरथी विभिन्न छे;
हुं शरीरथी जुदो गणुं, अे ज्ञानबळ मुजने मळो,
ने भीषण जे अज्ञान मारुं नाथ! ते सत्वर टळो. २.

सुख–दुःखमां, अरि–मित्रमां, संयोग के वियोगमां,
रखडुं वने वा राजभुवने, राचतो सुखभोगमां;
मम सर्वकाळे सर्व जीवमां, आत्मवत् बुद्धि बधी,
तुं आपजे मुज मोह कापी, आ दशा करुणानिधि. ३.

+ सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेसु जीवेसु कृपापरत्वम् ।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ।।१ ।।

प्रमादथी प्रयाण करीने, विचरतां प्रभु अहीं तहीं,
अेकेन्द्रियादि जीवने, हणतां कदी डरतो नहीं;
छेदी विभेदी दुःख दई, में त्रास आप्यो तेमने,
करजो क्षमा मुज कर्म हिंसक, नाथ विनवुं आपने. ५.

*मन मारुं दोषित थाय तो हुं दोष अतिक्रम जाणतो,
दोषित थतुं आचारमां तो दोष व्यतिक्रम मानतो;
विषयो तणी प्रवृत्तिमां हुं अतिचारी धारतो,
विषयो तणी आसक्तिमां हुं अनाचारी समजतो. ६.

मुज वचन वाणी उच्चारमां, तलभार विनिमय थाय तो,
जो अर्थ मात्रा पद महीं, लवलेश वधघट होय तो;
यथार्थ वाणी भंगनो, दोषित प्रभु हुं आपनो,
आपी क्षमा मुजने बनावो, पात्र केवळ बोधनो. १०.

❀

पाठ : ८
श्रावक-कर्तव्य

षट् आवश्यक कर्म

देवपूजा गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः ।
दानंचेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने ॥७॥

[पद्मनंदि पंचविंशतिका– उपासक– संस्कार]

अर्थ :—जिनेन्द्रदेवकी पूजा, निर्ग्रंथ गुरुओंकी सेवा, स्वाध्याय, संयम (योग्यतानुसार) तप और दान–ये छहः कर्म श्रावकोंको प्रतिदिन करने योग्य है।

* अर्थ :—मनकी शुद्धिमें क्षति होना, मनमें विकारभाव उत्पन्न होना वह ''अतिक्रम'' है, शीलव्रत याने व्रतमय प्रतिज्ञाका उल्लंघन करनेका भाव होना वह ''व्यतिक्रम'' है; विषयोंमें प्रवृत्ति वह ''अतिचार'' है और वे विषयोंमें अति आसक्ति वह ''अनाचार'' है।

શ્રી દિગમ્બર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ – ૩૬૪૨૫૦

श्रावकके अष्ट–मूलगुण

मद्यमांसमधुत्यागी त्यक्तोदुम्बरपंचकः ।
नामतः श्रावकः ख्यातो नान्यथाऽपि तथा गृही ॥७२६॥

(पंचाध्यायी)

अर्थ :—मद्य, माँस और मद्य का (पंचाध्यायी) त्याग करनेवाला और पाँच +उदुम्बुर फलोंको छोडनेवाला गृहस्थ नामधारी श्रावक कहनेमें आता है, लेकिन मद्यादिकका सेवन करनेवाला गृहस्थ नामसे भी श्रावक कहलाता नहीं है।

❀

[1]पाठ : ६
मिच्छा मि दुक्कडम्

आ भव ने भवोभव महीं थयो वेरविरोध,
अंध बनी अज्ञानथी, कर्यो अतिशय क्रोध;
ते सवि मिच्छा मि दुक्कडं.

जीव खमावुं छुं सवि, क्षमा करजो सदाय,
वेरविरोध टळी जजो, अक्षयपद–सुख सोय;
समभावी आतम थशे.

भारे कर्मी जीवडा, पीओ वेरनुं झेर,
भवाटवीमां ते भमे, पामे नहि शिव–लहेर;
धर्मनो मर्म विचारजो.

❀

१ –आलोचनादि–पदसंग्रह–पृष्ठ १०१, ५७.

+ जो पेड को तोडनेसे दूध नीकलता है ऐसे बड, पीपर, उंबर, कठुंबर, पाकर वृक्षोको क्षीरवृक्ष या उदुम्बुर कहते है। उनमें सूक्ष्म तथा स्थूल त्रस जीवोंकी बहुत उत्पत्ति होती है।

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

पाठ : १०

[परमपद प्राप्तिकी भावना कायोत्सर्गरूपसे कहनेमें आता है।]

(नमस्कार मंत्र बोलना)

अपूर्व अवसर अेवो क्यारे आवशे?
क्यारे थईशुं बाह्यांतर निर्ग्रंथ जो?
सर्व संबंधनुं बंधन तीक्ष्ण छेदीने,
विचरशुं कव महत्पुरुषने पंथ जो? अपूर्व० १.

सर्व भावथी औदासीन्यवृत्ति करी,
मात्र देह ते संयमहेतु होय जो;
अन्य कारणे अन्य कशुं कल्पे नहीं,
देहे पण किंचित् मूर्छा नव जोय जो. अपूर्व० २.

दर्शनमोह व्यतीत थई ऊपज्यो बोध जे,
देह भिन्न केवल चैतन्यनुं ज्ञान जो;
तेथी प्रक्षीण चारित्रमोह विलोकिये,
वर्ते अेवुं शुद्धस्वरूपनुं ध्यान जो. अपूर्व० ३.

आत्मस्थिरता त्रण संक्षिप्त योगनी,
मुख्यपणे तो वर्ते देहपर्यंत जो;
घोर परिषह के उपसर्गभये करी,
आवी शके नहीं ते स्थिरतानो अंत जो. अपूर्व० ४.

संयमना हेतुथी योगप्रवर्तना,
स्वरूपलक्षे जिनआज्ञा आधीन जो;
ते पण क्षण क्षण घटती जाती स्थितिमां,
अंते थाये निजस्वरूपमां लीन जो. अपूर्व० ५.

पंच विषयमां रागद्वेष विरहितता,
पंच प्रमादे न मळे मननो क्षोभ जो;

द्रव्य, क्षेत्र ने काळ, भाव प्रतिबंधवण,
विचरवुं उदयाधीन पण वीतलोभ जो. अपूर्व० ६.

क्रोध प्रत्ये तो वर्ते क्रोधस्वभावता,
मान प्रत्ये तो दीनपणानुं मान जो;
माया प्रत्ये माया साक्षी भावनी,
लोभ प्रत्ये नहीं लोभ समान जो. अपूर्व० ७.

बहु उपसर्गकर्ता प्रत्ये पण क्रोध नहीं,
वंदे चक्री तथापि न मळे मान जो;
देह जाय पण माया थाय न रोममां,
लोभ नहीं छो प्रबळ सिद्धि निदान जो. अपूर्व० ८.

नग्नभाव, मुंडभाव सह अस्नानता,
अदंतधोवन आदि परम प्रसिद्ध जो;
केश, रोम, नख के अंगे शृंगार नहीं,
द्रव्यभाव संयममय निर्ग्रंथ सिद्ध जो. अपूर्व० ९.

शत्रु मित्र प्रत्ये वर्ते समदर्शिता,
मान अमाने वर्ते ते ज स्वभाव जो;
जीवित के मरणे नहीं न्यूनाधिकता,
भव मोक्षे पण शुद्ध वर्ते समभाव जो. अपूर्व० १०.

अेकाकी विचरतो वळी स्मशानमां,
वळी पर्वतमां वाघ सिंह संयोग जो;
अडोल आसन, ने मनमां नहीं क्षोभता,
परम मित्रनो जाणे पाम्या योग जो. अपूर्व० ११.

घोर तपश्चर्यामां पण मनने ताप नहीं,
सरस अन्ने नहीं मनने प्रसन्नभाव जो;

रजकण के रिद्धि वैमानिक देवनी,
सर्वे मान्यां पुद्गल अेक स्वभाव जो. अपूर्व० १२.

(नमस्कार मंत्र बोलके कायोत्सर्ग पूर्ण करे।)

❀

पाठ : ११ प्रत्याख्यान

[एक साथ दो प्रतिक्रमण व केवल यह प्रतिक्रमण करे तब, प्रथम प्रतिक्रमण के पाठ 16 के मुताबिक प्रत्याख्यान करना।]

❀

पाठ : १२

जिनजीनी वाणी

सीमंधर मुखथी फूलडां खरे,
अेनी कुंदकुंद गूंथे माळ रे,
जिनजीनी वाणी भली रे...सीमंधर०

वाणी भली मन लागे रळी,
जेमां सार–समय शिरताज रे,
जिनजीनी वाणी भली रे...सीमंधर०

गूंथ्यां पाहुड ने गूंथ्युं पंचास्ति,
गूंथ्युं प्रवचनसार रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.

गूंथ्युं नियमसार, गूंथ्युं रयणसार,
गूंथ्यो समयनो सार रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.....सीमंधर०

स्याद्वाद केरी सुवासे भरेलो,
जिनजीनो ॐकारनाद रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.

वंदुं जिनेश्वर, वंदुं हुं कुंदकुंद,
वंदुं अे ॐकारनाद रे,
जिनजीनी वाणी भली रे....सीमंधर०

हैडे हजो, मारा भावे हजो,
मारा ध्याने हजो जिनवाण रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.

जिनेश्वरदेवनी वाणीना वायरा,
वाजो मने दिनरात रे,
जिनजीनी वाणी भली रे....सीमंधर०

❀

पाठ : १३

अंतिम–मंगल

तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता।
निश्चितं स भवेद्भव्यो भाविनिर्वाणभाजनम्॥ २३॥

[पद्मनंदिपंचविंशतिका–एकत्व सप्तति]

अर्थ :—जो जीवने प्रसन्नचित्तसे यह चैतन्यस्वरुप आत्माकी बात भी सुनी है, वह भव्य पुरुष भविष्यमें होनेवाली मुक्तिका अवश्य भाजन होगा।

सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं।
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम्॥

''इति द्वितिय प्रतिक्रमण पूर्ण।''

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे॥

णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णादो जो सो दु सो चेव॥

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते॥

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम्।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम्॥

❀

(स्वाध्याय के लिये)

उपादान-निमित्तका दोहा

प्रश्न :—

गुरु-उपदेश निमित्त बिन, उपादान बलहीन;
ज्यों नर दूजे पांव बिन, चलवेको आधीन. १.

हौं जानै था अेक ही, उपादानसों काज;
थकै सहाई पौन बिन, पानी मांहि जहाज. २.

अर्थ :—गुरुके उपदेशके निमित्त बिना उपादान (आत्मा स्वयं) बल हीन है; जैसे मनुष्यको चलने के लिये, दूसरे पाँव बिना चले नहीं।

जो ऐसा ही जानता है कि—''एक उपादान से ही कार्य होता है (वह बराबर नहीं.) जैसे जलमें जहाज पवनकी मददके बिना थकता है वैसे।

उत्तर :—

ज्ञान नैन किरिया चरण, दोऊ शिवमग धार;
उपादान निहचै जहाँ, तहाँ निमित्त व्यवहार. ३.

अर्थ :—सम्यग्दर्शन सहित ज्ञान और वह ज्ञानमे चरणरूप (स्थिरतारूप) **क्रिया, वे दोनों शिवमार्ग** (मोक्षमार्ग) **को धारण करते है. जहाँ उपादान वास्तव** (निश्चय) **हो, तहाँ निमित्त होगा ही यह व्यवहार है।** (परवस्तु–निमित्त हाजररूप होता है ऐसे परको ज्ञान करना, उसको व्यवहार कहनेमें आता है।)

उपादान निज गुण जहां, तहं निमित्त पर होय;
भेदज्ञान परमाण विधि, विरला बूझै कोय. ४.

अर्थ :—जहाँ अपना गुण उपादानरूपसे तैयार हो, वहाँ उसे अनुकुल पर निमित्त होता है, ऐसा भेदज्ञानके प्रविणपुरुष जानते है और वैसा कोई विरल ही बुझता है। (मुक्त होते है)

उपादान बल जहँ तहाँ, नहिं निमित्तको दाव;
अेक चक्रसों रथ चलै, रविको यहै स्वभाव. ५.

अर्थ :—जहाँ देखो वहाँ उपादानका बल है, निमित्तका दाव नहीं है, अर्थात् निमित्त कुछ भी कर सकता नहीं. जैसे सूर्यका ऐसा स्वभाव है कि एक चक्रसे रथ चलता है, वैसे।

सधै वस्तु असहाय जहँ, तहँ निमित्त है कौन;
ज्यों जहाज परवाहमें, तिरै सहज बिन पौन. ६.

नोंध :—(१) उपादान = वस्तु की सहज शक्ति। (२) निमित्त = संयोगी कारण। (३) दृष्टांत में एक चक्र सूर्यका कहा, वैसे ही वर्तमानमें युरोप इ. देशोमें पहाडीमें चलती रेल्वे एक ही चक्रसे चलती है। (४) उपादान स्वयं स्वयंसे, स्वयंमें कार्य करता है। निमित्तकी मौजुदगी होती है, पर वह उपादानको कुछ मदद या प्रभाव नहीं कर सकता–ऐसा बताया है।

अर्थ :—वस्तु (आत्मा) पर सहाय के बिना ही साध्य हो सकता है, उसमें निमित्त कैसा ? (निमित्त परमें कुछ करता नहीं।) जैसे जल–प्रवाहमें जहाज पवन के बिना सहज तैरता है, वैसे।

उपादानविधि निरवचन, है निमित्त-उपदेश;
बसै जु जैसे देशमें, धरै सु तैसे भेष. ७.

अर्थ :—उपादानकी रीत निर्वचनीय है। निमित्तसे उपदेश देनेकी रीत है। जैसे जीव जो देशमें रहता है, वह देशका भेष पहेनेगा।

❀

भैया भगवतीदासजी कृत

उपादान–निमित्तका संवाद

(दोहरा)

पाद प्रणमि जिनदेवके, अेक उक्ति उपजाय;
उपादान अरु निमित्तको, कहुं संवाद बनाय. १.

अर्थ :—जिनदेवके चरणोंको प्रणाम करके, एक अपूर्व कथन तैयार करता हूँ। उपादान और निमित्तका संवाद बनाकर यह कह रहा हूँ।...1

प्रश्न :—

पूछत है कोऊ तहां, उपादान किह नाम;
कहो निमित्त कहिये कहा, कबके हैं इह ठाम. २.

अर्थ :—यदि कोई प्रश्न करे कि–उपादान किसका नाम ? निमित्त किसको कहे ? और कबसे उनका संबंध (मिलाप) है, यह कहो।...2

उत्तर :—

उपादान निजशक्ति है, जियको मूल स्वभाव;
है निमित्त परयोगतें, बन्यो अनादि बनाव. ३.

अर्थ :—उपादान स्वयंकी शक्ति है, यह जीवका मूल स्वभाव है;

और परसंयोग 'निमित्त' है. उन (दोनों) का संबंध अनादिसे बन रहा है।...3

निमित्त :—

निमित्त कहै मोकों सबै, जानत हैं जगलोक;
तेरो नाँव न जानहीं, उपादान को होय. ४.

अर्थ :—निमित्त कहता है, जगतके सभी लोग मुझे जानते है; उपादान क्या है? उसका नाम भी जानते नहीं।...4

उपादान :—

उपादान कहै रे निमित्त, तू कहा करे गुमान;
मोकों जानें जीव वे, जो हैं सम्यक्तान. ५.

अर्थ :—उपादान कहता है :—अरे निमित्त! तूं अभिमान क्युं कर रहा है? जो जीव सम्यग्ज्ञानी (आत्माके) सच्चे ज्ञानी है, वे मुझे जानते है।...5

निमित्त :—

कहें जीव सब जगतके, जो निमित्त सोई होय;
उपादानकी बातको, पूछे नांहि कोय. ६.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—जगतके सभी जीव कहते है कि यदि निमित्त हो तो (कार्य) होगा, उपादानकी बात कोई कुछ पूछते नहीं।...6

उपादान :—

उपादान बिन निमित्त तू, कर न सकै इक काज;
कहा भयो जग ना लखै, जानत हैं जिनराज. ७.

अर्थ :—उपादान कहता है :—अरे निमित्त! (एक भी कार्य) उपादानके बिना हो नहीं सकता। जगत न जाने, उससे क्या हुआ? जिनराज यह जानते है।...7

निमित्त :—

देव जिनेश्वर, गुरु यती, अरु जिन-आगम सार;
इहि निमित्ततें जीव सब, पावत हैं भवपार. ८.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—जिनेश्वर देव, निर्ग्रंथगुरु और वीतरागके आगम उत्कृष्ट है; वे निमित्तो द्वारा सब जीवो भवका पार पामते है।...8

उपादान :—

यह निमित्त इस जीवको, मिल्यो अनंती बार;
उपादान पलट्यो नहीं, तौ भटक्यौ संसार. ९.

अर्थ :—उपादान कहता है :—वे निमित्तो यह जीवको अनंत बार मिले, पर उपादान (जीवस्वयं) पलटा नहीं, इसलिये वह संसारमें भटक रहा है।...9

निमित्त :—

कै केवलि कै साधुके, निकट भव्य जो होय;
सो क्षायक सम्यक् लहै, यह निमित्तबल जोय. १०.

अर्थ :—निमित्त कहता है : यदि केवली भगवान वा श्रुतकेवली मुनिके पास भव्य जीव होगा तो क्षायिक सम्यक्त्व प्रगटता है। देखो, यह निमित्तका बल!...10

उपादान :—

केवलि अरु मुनिराजके, पास रहैं बहु लोय;
पै जाको सुलट्यो धनी, क्षायक ताको होय. ११.

अर्थ :—उपादान कहता है :—केवली और श्रुतकेवली मुनिराजके पास बहुत लोग रहते है, लेकिन जिसका धनी (आत्मा) सूलटता है, उसको ही क्षायिक (सम्यक्त्व) होता है।...11

निमित्त :—

हिंसादिक पापन किये, जीव नर्कमें जाहिं;
जो निमित्त नहिं कामको, तो इम काहे कहाहिं. १२.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—जो हिंसादिक पाप करते है वह नर्कमें जाते हैं, जो निमित्त कामका नहीं है फिर ऐसा क्यों कहा ?...12

उपादान :—

हिंसामें उपयोग जिहं, रहै ब्रह्मके राच;
तेई नर्कमें जात हैं, मुनि नहिं जाहिं कदाच. १३.

अर्थ :—हिंसामें जिसका उपयोग (चैतन्यका परिणाम) होगा, और जो आत्मा उसमें राचता हैं, वह ही नर्कमें जाता है, (भाव) मुनि कभी नर्कमें नहीं जाते।...13

निमित्त :—

दया दान पूजा किये, जीव सुखी जग होय;
जो निमित्त झूठो कहो, यह क्यों मानै लोय. १४.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—दया, दान, पूजा करनेसे जीव जगतमें सुखी होता है, तुम कहते हो, वैसे निमित्त झूठा है फिर लोक ऐसा क्यों मानते है ?...14

उपादान :—

दया दान पूजा भली, जगत मांहिं सुखकार;
जहँ अनुभवको आचरन, तहं यह बंध विचार. १५.

अर्थ :—उपादान कहता है :—दया, दान, पूजा इत्यादि शुभभाव जगतमें बाह्य सवलत दिलावे, पर अनुभवके आचरणका विचार करते, वे सभी बंध है, (धर्म नहीं)।...15

निमित्त :—

यह तो बात प्रसिद्ध है, सोच देख उरमाहिं;
नरदेहीके निमित्त बिन, जिय क्यों मुक्ति न जाहिं. १६.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—यह बात तो प्रसिद्ध है कि नरदेहके निमित्त बिना जीव मुक्तिको प्राप्त कर नहीं सकता; इसलिये हे उपादान! तुं यह अंतरमें विचार कर।...16

उपादान :—

देह पींजरा जीवको, रोकै शिवपुर जात;
उपादानकी शक्तिसों, मुक्ति होत रे भ्रात! १७.

अर्थ :—उपादान कहता है :—अरे भाई! देहका पिंजर तो जीवको मोक्षमें जानेसे रोकता है, लेकिन उपादानकी शक्तिसे मोक्ष होता है।...17

[नोंध :—देहका पिंजर जीवको मोक्ष जानेसे रोकता है, यह जो कहनेमें आया, वह व्यवहार कथन है। जीव शरीरमें अपनापन की गाँठ बांधके, विभावमें रुक जाता है, तब शरीर, जीवको रोकता है, ऐसा उपचार से कहा जाता है।]

निमित्त :—

उपादान सब जीवपै, रोकनहारो कौन;
जाते क्यों नहिं मुक्तिमें, बिन निमित्तके हौन. १८.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—उपादान तो सब जीवोंको है, तो फिर उनको रोकता कौन है? मुक्तिमें क्यों नहीं जाते? निमित्त नहीं मिलनेसे ऐसा होता है।...18

उपादान :—

उपादान सु अनादिको, उलट रह्यौ जगमाहिं;
सुलटत ही सूधे चले, सिद्धलोकको जाहिं. १९.

अर्थ :—उपादान कहता है :—जगतमें उपादान अनादि से उल्टा प्रवर्तता है, सूलटनेके बाद, सही चाल चलता है, अर्थात् सच्चा ज्ञान और चारित्र होता है और इसलिये वह सिद्धलोकमें (मोक्षमें) जाता है।...19

निमित्त :—

कहुं अनादि बिन निमित्त ही, उलट रह्यो उपयोग;
ऐसी बात न संभवै, उपादान तुम जोग. २०.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—अनादिसे निमित्त बिना ही उपयोग (ज्ञानका व्यापार) क्या उलटा हो रहा है? हे उपादान! ऐसी तेरी बात यथार्थ संभवती नहीं है।...20

उपादान :—

उपादान कहे रे निमित्त, हमपै कही न जाय;
ऐसे ही जिन केवली, देखै त्रिभुवनराय. २१.

अर्थ :—उपादान कहता है :—अरे निमित्त! मेरे से तो नहीं कहा जाता। जिनकेवली त्रिभुवनराय ऐसा ही देख रहे है।

[नोंध :—इधर यह तात्पर्य है कि : उपादानमें कार्य होता है, तभी निमित्त स्वयं मौजुद होता है, लेकिन वह उपादानका कुछ भी कर सकता नहीं—ऐसा अनंतज्ञानी उनके ज्ञानमें देखते है।...21]

निमित्त :—

जो देख्यो भगवानने, सो ही सांचो आहि;
हम तुम संग अनादिके, बली कहोगे काहि. २२.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—भगवानने जो देखा, वही सच्चा है, किसी तेरा और मेरा संबंध अनादिका है, इसलिये हममेंसे बलवान किसको समजे? (दोनो सरीखे है, ऐसा तो कहो)...22

उपादान :—

उपादान कहे वह बली, जाको नाश न होय;
जो उपजत विनशत रहै, बली कहांतें सोय. २३.

अर्थ :—उपादान कहता है, जिसका नाश नहीं वह बलवान; जो उपजे और विणसे, वह बलवान कैसे हो सकता है? (नहीं हो सकता)...23

नोंध :—उपादान त्रिकाली अखंड एकरूप वस्तु स्वयं है, इसलिए उसका नाश नहीं है। निमित्त तो संयोगरुप है, आता है, जाता है, सो नाशवंत है, इसलिये उपादान ही बलवान है।...23

निमित्त :—

उपादान तुम जोर हो, तो क्यों लेत अहार;
परनिमित्तके योगसों, जीवत सब संसार. २४.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—हे उपादान! तेरा जोर है तो तुं आहार क्यों लेता है? संसारके सभी जीवों पर निमित्तके योगसे जी रहे हैं।...24

उपादान :—

जो अहारके जोगसों, जीवत है जगमाहिं;
तो वासी संसारके, मरते कोऊ नाहिं. २५.

अर्थ :—उपादान कहता है :—यदि आहार के जोर से जगतके जीवो जी रहे हैं, तो संसारवासी कोई जीव मरते ही नहीं।...25

निमित्त :—

सूर सोम मणि अग्निके, निमित लखैं ये नैन;
अंधकारमें कित गयो, उपादान दृग दैन. २६.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—सूर्य, चंद्र, मणि या अग्नि के निमित्त होगा तो आँख देख सकती है; उपादान जब देखनेका (कार्य) करता है, तो अंधकारमें वह किधर गया? (अंधकारमें क्यों आँखसे देख नहीं सकता?) ...26

उपादान :—

सूर सोम मणि अग्नि जो, करैं अनेक प्रकाश;
नैनशक्ति बिन ना लखै, अंधकार सम भास. २७.

अर्थ :—उपादान कहता है :—चूँकि सूर्य, चंद्र, मणि और अग्नि अनेक प्रकारका प्रकाश करता है, फिर भी देखनेकी शक्ति के बिना देख नहीं सकते; जब अंधकारमय भासता है। ...27

निमित्त :—

कहै निमित्त वे जीव को मो बिन जगके मांहि?
सबै हमारे वश परे, हम बिन मुक्ति न जाहिं. २८.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—मेरे बिना जगतमें जीवको कौन गिने? सब मेरे आधीन है, मेरे बिना मुक्ति नहीं होती?...28

उपादान :—

उपादान कहे रे निमित्त! ऐसे बोल न बोल;
तोको तज निज भजत हैं, तेही करैं किलोल. २९.

अर्थ :—उपादान कहता है :–अरे निमित्त! ऐसे वचनो न बोल! तेरी दृष्टि छोड़कर, जो जीव अपना भजन करता है, वह ही कल्लोल (आनंद) करता है।...29

निमित्त :—

कहै निमित्त हमको तजे, ते कैसे शिव जात?
पंचमहाव्रत प्रगट हैं, और हु क्रिया विख्यात. ३०.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—हमको तजकर मोक्ष कैसे जायेंगे? पाँच महाव्रत प्रगट है; और दूसरी क्रिया भी प्रसिद्ध है। (उन्हें लोग मोक्षका कारण मानते है।)...30

उपादान :—

पंचमहाव्रत जोगत्रय, और सकल व्यवहार;
परको निमित्त खपायके, तब पहुंचे भवपार. ३१.

अर्थ :—उपादान कहता है :—पाँच महाव्रत, मन, वचन और काया, वे तीनकी ओर जुडना; अब, जभी सब व्यवहार और पर–निमित्तका लक्ष जीव छोड़ता है तभी भवके पार पहोंचता है।...31

निमित्त :—

कहै निमित्त जग मैं बडो, मोतैं बडो न कोय;
तीन लोकके नाथ सब, मो प्रसादतैं होय. ३२.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—जगतमें मैं बड़ा हूँ, मेरेसे बड़ा कोई नहीं है; सब तीन लोकके नाथ (तीर्थंकरो) भी मेरी कृपासे होते है।

नोंध :—सम्यग्दर्शनकी भूमिकामें ज्ञानीको शुभ विकल्प आनेसे, तीर्थंकर नामकर्म बंधता है, वह दृष्टांत बताकर, स्वयम्का बलवानपना 'निमित्त' आगे धरता है।...32

उपादान :—

उपादान कहै तू कहा, चहुंगतिमें ले जाय;
तो प्रसादतैं जीव सब, दुःखी होहिं रे भाय. ३३.

अर्थ :—उपादान कहता है :—तुं कौन है? तुं तो जीव को चारगतिमें ले जाता है। भाई! तेरी कृपासे सब जीव दुःखी ही होते है।

नोंध :—निमित्ताधीन दृष्टिका फल चार गति याने संसार है। निमित्त मजबूरीसे जीवको चार गतिमें ले जाता है, ऐसा समझना नहीं।...33

निमित्त :—

कहै निमित्त जो दुःख सहै, सो तुम हमहि लगाय;
सुखी कौनतैं होत है, ताको देहु बताय. ३४.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—जीव दुःख सहन करता है, वह दोषारोपण, तुम हमारे पे करते हो, तो फिर यह बतावो कि जीव सुखी कैसे होता है?...34

उपादान :—

जो सुखको तू सुख कहै, सो सुख तो सुख नाहिं;
ये सुख, दुखके मूल हैं, सुख अविनाशी माहिं. ३५.

अर्थ :—उपादान कहता है :—जिस सुखको तु सुख कहता है वह सुख ही नहीं, वह सुख तो दुःखका मूल है; आत्मा के अंतरमें अविनाशी सुख है।...35

निमित्त :—

अविनाशी घट घट बसै, सुख क्यों विलसत नाहिं?
शुभनिमित्तके योग बिन, परे परे विललाहिं. ३६.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—अविनाशी (सुख) तो धटपट (हरजीव) में बसा हुआ है, तो जीवोको सुखका विलास (भोगवटो) क्यों नहीं? शुभ निमित्तके योग बिना जीव पल पल दुःखी हो रहा है।...36

उपादान :—

शुभनिमित्त इह जीवको, मिल्यो कई भवसार;
पै इक सम्यक् दर्श बिन, भटकत फिर्यो गंवार. ३७.

अर्थ :—उपादान कहता है :—शुभ निमित्त यह जीव को बहोत भवोंमें मिला, फिर भी एक सम्यग्दर्शनके बिना, यह जीव गँवारकी तरह (अज्ञानभावसे) भटक रहा है।...37

निमित्त :—

सम्यक्दर्श भये कहा त्वरित मुक्तिमें जाहिं;
आगे ध्यान निमित्त है, ते शिवको पहुंचाहिं. ३८.

अर्थ :—निमित्त कहता है :—सम्यग्दर्शन होनेसे, क्या हुआ? उससे क्या तुरंत मोक्षमें जा पाते है? आगे भी ध्यान निमित्त है; वह शिव (मोक्ष) पदमें पहोंचाता है।...38

उपादान :—

छोर ध्यानकी धारना, मोर योगकी रीति;
तोर कर्मके जालको, जोर लई शिवप्रीति. ३९.

अर्थ :—उपादान कहता है :—ध्यानकी धारणा छोड़कर, योगकी रीतको पूर्ण करके, कर्मजालको तोडकर, पुरुषार्थसे शिवपदकी प्राप्ति जीव करता है।...39

निमित्तका पराजय :—

तब निमित्त हार्यो तहां, अब नहिं जोर बसाय;
उपादान शिवलोकमें, पहुंच्यो कर्म खपाय. ४०.

अर्थ :—तब निमित्त वहाँ हार गया; अब वह कुछ जोर नहीं कर पाता। उपादान कर्मका क्षय करके शिवलोकमें (सिद्धपदमें) पहोंच गया।...40

उपादानकी जीत :—

उपादान जीत्यो तहां, निजबल कर परकास;
सुख अनंत ध्रुव भोगवे, अंत न बरन्यो तास. ४१.

अर्थ :—ऐसे अपने बलसे उपादान जीता। (वह उपादान अब) अनंत ध्रुव सुखका अनुभव कर रहा है, जिसका कभी अंत आएगा नहीं।...41

तत्त्वस्वरूप :—

उपादान अरु निमित्त ये, सब जीवनपै वीर;
जो निजशक्ति संभारहीं, सो पहुंचे भवतीर. ४२.

अर्थ :—उपादान और निमित्त, वे सभी जीवोंका होता है, पर जो वीर है वह निजशक्तिको संभालता है और भवको पार उत्तरता है।...42

आत्माका महिमा :—

भैया महिमा ब्रह्मकी, कैसे वरनी जाय;
वचन-अगोचर वस्तु है, कहिवो वचन बनाय. ४३.

अर्थ :—भैया (भगवतीदास) कहते है :—ब्रह्मका (आत्माका) महिमाका कैसे वर्णन करे? वह तो वचनसे अगोचर है–किस बचनोंसे बताया जाय?...43

सरस संवाद :—

उपादान अरु निमित्तको, सरस बन्यो संवाद;
समदृष्टिको सुगम है, मूरखको बकवाद. ४४.

अर्थ :—उपादान और निमित्तका यह सुंदर संवाद बना है; सम्यग्दृष्टि को सरल है, मूरखको बकवास लगेगा।...44

आत्माके गुणोंको पहिचाने वह इस स्वरूपको जाने :—

जो जानै गुण ब्रह्मके, सो जानै यह भेद;
साख जिनागमसों मिलै, तो मत कीज्यो खेद. ४५.

अर्थ :—आत्माके गुणोंको जो जाने, वह इसका मर्म पहिचाने; साक्षी जिनागमसे मिलती है। सो खेद (संदेह) न करना।...45

आग्रामें संवाद बनाया :—

नगर आगरो अग्र है, जैनी जनको वास;
तिहं थानक रचना करी, 'भैया' स्वमतिप्रकास. ४६.

अर्थ :—आगरा शहेर जैनी जनोके वास के लिये अग्र है; उस क्षेत्र यह रचना (भगवतीदास) भैयाने अपने ज्ञान अनुसार की है वा अपने ज्ञानके प्रकाशके लिये की है।...46

रचनाकाल :—

संवत विक्रम भूपको, सत्रहसै पंचास;
फाल्गुन पहिले पक्षमें, दशों दिशा परकाश. ४७.

अर्थ :—विक्रम राजाके संवत 1750 के फालगुनके प्रथम पक्षमें दशे दिशाओंमें इसका उद्योत हुआ।...47

इति उपादान–निमित्त संवाद

❀

श्री सद्गुरुदेव-उपकार दर्शन

अहो! अहो! श्री सद्गुरु, करुणासिंधु अपार;
आ पामर पर प्रभु कर्यो, अहो! अहो! उपकार.
शुं प्रभु चरण कने धरुं, आत्माथी सौ हीन;
ते तो प्रभुअे आपियो, वर्तुं चरणाधीन.
आ देहादि आजथी, वर्तो प्रभु आधीन;
दास दास हुं दास छुं, आप प्रभुनो दीन.
षट् स्थानक समजावीने, भिन्न बताव्यो आप;
म्यानथकी तरवारवत्, अे उपकार अमाप.
जे स्वरूप समज्या विना पाम्यो दुःख अनंत;
समजाव्युं ते पद नमुं, श्री सद्गुरु भगवंत.
परम पुरुष प्रभु सद्गुरु, परमज्ञान सुखधाम;
जेणे आप्युं भान निज, तेने सदा प्रणाम.
देह छतां जेनी दशा, वर्ते देहातीत;
ते ज्ञानीना चरणमां, हो वंदन अगणित.

❀

प्रणिपात-स्तुति

हे परमकृपालु देव! जन्म, जरा, मरणादि सर्वदुःखोंका अत्यंत क्षय करनार ऐसा वीतराग पुरुषका मूल मार्ग आप श्रीमद्ने अनंतकृपा करके मुझे दिया, वे अनंत उपकारका प्रतिउपकार करनेको, मैं सर्वथा असमर्थ हूँ; चूंकि आप श्रीमद् कुछ भी ग्रहण करनेको निःस्पृह हो; इसलिये मैं मन, वचन और कायाकी एकाग्रतासे आपना चरणारविंदमें नमस्कार करता है; आपकी परमभक्ति और वीतरागपुरुषके मूलधर्मकी उपासना, मेरे हृदयमें भवपर्यंत अखंड जाग्रत रहो, इतनी ही माँग है, वह सफल होवे!

ॐ शांति : शांतिः शांतिः।

गुरुदेवके प्रति क्षमापना-स्तुति

[उत्तम क्षमावणी-पर्व :]

गुरुदेव! तारां चरणमां फरी फरी करुं हुं वंदना,
स्थापी अनंतानंत तुज उपकार मारा हृदयमां. १.

करीने कृपादृष्टि, प्रभु! नित राखजो तुम चरणमां,
रे! धन्य छे अे जीवन जे वीते शीतळ तुज छांयमां. २.

गुरुदेव! अविनय कंई थयो, अपराध कंई पण जे थया,
करजो क्षमा अम बाळने, अे दीनभावे याचना. ३.

मन-वचन-काय थकी थया जाण्ये-अजाण्ये दोष जे,
करजो क्षमा सौ दोषनी, हे नाथ! विनवुं आपने. ४.

तारी चरणसेवा थकी सौ दोष सहेजे जाय छे,
क्रोधादि भाव दूरे थई भावो क्षमादिक थाय छे. ५.

गुरुवर! नमुं हुं आपने, अम जीवनना आधारने,
वैराग्यपूरित ज्ञान-अमृत सींचनारा मेघने. ६.

मिथ्यात्वभावे मूढ थई निजतत्त्व नहि जाण्युं अरे!
आपी क्षमा अे दोषनी आ परिभ्रमण टाळो हवे. ७.

सम्यक्त्व-आदिक धर्म पामुं, तुंज चरण-आश्रय वडे;
जय जय थजो प्रभु! आपनो, सौ भक्त शासनना चहे. ८.

❀

तात्त्विक–सुवाक्य

- दंसणमूलो धम्मो। धर्मका मूल दर्शन है।
- समयसार जिनराज है, स्याद्वाद जिन–वैन।
- मैं सच्चिदानंद परमात्मा हूँ।
- स्वरूपस्थिति सद्गुरुदेवका प्रभावना–उदय जगतका कल्याण करो, जयवंत वर्तो।
- आत्मा अपनेपनसे है और पर पनसे नहीं है, ऐसी जो (अपनेसे अस्तिरुप) (परसे नास्तिरुप) दृष्टि वह ही वास्तवमें अनेकान्त दृष्टि है।
- वह साधन बार अनंत कियो, तदपि कछु हाथ हजु न वर्यो; अब क्यों न बिचारत है मनसे कछु और रहा उन साधनसें।
- दुर्लभ मनुष्यपना पाकर जो विषयोंमें रमते है, वह भस्मके लिये रत्नको जलाता है।
- महापुरुषके आचरण देखनेके अलावा, उनके अंतःकरण देखना, वही सत्य परीक्षा है।
- कोई भी तुच्छ विषयमें प्रवेश होने पर भी उज्ज्वल आत्माओंका स्वतः वेग वैराग्यमें ही बना रहता है।
- ज्ञानसे ही राग–द्वेष नष्ट होता है। ज्ञानका मुख्य साधन विचार है।
- विचारदशाका मुख्य साधन सत्पुरुषके वचनका यथार्थ ग्रहण है।
- समझके बिना, आगम अनर्थकारी हो जावे। संत बिना अंत की बातका पता नहीं लगता।
- अंतरका सुख अंतरंगकी स्थितिमें है, स्थिति होनेके लिये बाह्य पदार्थोंका आश्चर्य भूल जा। समश्रेणी टिकना दुर्लभ है, निमित्ताधीन वृत्ति बारबार हो जाती है। न होवे उसके लिये अचल, गंभीर उपयोग को धारण कर।

- शुद्ध उपयोग वह धर्म; भावसे भवका अभाव।
- क्रिया वह कर्म, उपयोग वह धर्म, परिणाम वह बंध, भूल वह मिथ्यात्व, शोकको भूल जाना—ये उत्तम वस्तु ज्ञानीओंने मुझे दी।
- तुझ पादसे स्पर्शाई ऐसी धूलिको भी धन्य है।
- जिसको पुन्यकी रुचि है, उसको जडकी रुचि है, उसे आत्माके धर्मकी रुचि नहीं।
- अहो! श्री सत्पुरुष! अहो! आपके वचनामृत; मुद्रा और सत्समागम! बारबार अहो! अहो!!
- जैनम् जयति शासनम् अनादि निधनम्।
- चैतन्य पदार्थकी क्रिया चैतन्यमें होती है, जडमें नहीं।
- निरंजन ज्ञानमयी परमात्मद्रव्य उपादेय है।
- शिवमय, अनुपम–ज्ञानमय शुद्धात्मस्वरुप उपादेय है।
- शुद्धात्मद्रव्यकी प्राप्तिके उपादानरुप निर्विकल्प समाधि उपादेय है।
- केवलज्ञानादि गुणरुप जो शुद्धात्म स्वरुप है, वह आराधने योग्य है।
- चिदानंद चिद्रूप एक अखंडस्वभाव शुद्धात्मतत्त्व ही सत्य है।